CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियां

ओ· पी· जग्गी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियाँ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियाँ

लेखक

डा० ओ० पी० जग्गी

एम. डी., पी-एच. डी., एफ. सी. सी. पी. (यू. एस. ए.)

चिकित्सीय गवेषणा विभागाध्यक्ष

वल्लभभाई पटेल चैस्ट इंस्टीट्यूट

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

1971

आत्माराम एंड संस

दिल्ली. नई दिल्ली. लखनऊ. जयपुर. चंडीगढ़

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

PRACHEEN BHARAT KE VAIGYANIK
AUR
UNKI UPLABDHIYAN
By Dr O. P. Jaggi
Price : Rs. 5.00

1971 © Atma Ram & Sons, Delhi-6

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा तथा युवक सेवा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रकाशकों के सहयोग से कार्यान्वित योजना के अन्तर्गत प्रकाशित ।

अनुवादक : धीरेन्द्र अग्रवाल
पुनरीक्षक : प्रो० एफ० सी० औलक

प्रकाशक :
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एंड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ :
हौज़ खास, नई दिल्ली
धमानी मार्केट, जयपुर
17, अशोक मार्ग, लखनऊ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चंडीगढ़

मूल्य : पाँच रुपये मात्र

मुद्रक :
रूपक प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मंत्रालय के तत्त्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक ही है कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हों, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महँगी न हों, ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ खरीदकर उन्हें मदद पहुँचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके अनुवाद और कापीराइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा-मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमें विश्वास है कि प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक होगा और इस व्यवस्था के फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है, यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राक्कथन

हमारे देश के विद्यार्थी एवं शिक्षित वर्ग में तथा इससे कहीं अधिक विदेशों में प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं विज्ञान के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों के बारे में बहुत ही कम जानकारी है। इसका प्रमुख कारण यही है कि इस विषय पर पुस्तकों का अभाव रहा है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इस उद्देश्य की पूर्ति करेगी।

पुस्तक की भूमिका अपेक्षाकृत वृहद हो गई है, मैंने इसमें प्राचीन भारतीय विज्ञान का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुझे विश्वास है कि भूमिका को पढ़नेके पश्चात् पाठकके लिए विषय को समझकर उसका मनन करना निश्चय ही सरल हो जायेगा। मैंने भाषा को यथासम्भव सरल करने का प्रयास किया है तथा तकनीकी शब्दों और विवरण का प्रयोग बहुत ही कम किया है। जहां वांछित समझा गया है, तकनीकी विवरण अथवा शब्दों की व्याख्या कर दी है साथ ही कथनों की यथार्थता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। जो विद्यार्थी तथा व्यक्ति इस विषय से अपरिचित होते हुए भी इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के उत्सुक हैं, वे इस पुस्तक से आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक कुछ पाठकों को इस विषयपर और आगे शोध करने के लिए प्रेरित करेगी। जिन वैज्ञानिकों की जीवन-झलकियां

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इस पुस्तक में दी गई हैं, उनमें से किन्हीं कतिपय वैज्ञानिकों की जीवनी और कार्य-कलापों के बारे में उन पाठकों द्वारा मोनोग्राफ (प्रबन्ध) प्रस्तुत करने की आशा भी मैं करता हूं।

—ओ० पी० जग्गी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आभार प्रदर्शन

मैं इतने अधिक व्यक्तियों का आभारी हूं कि उनमें से प्रत्येक का अलग-अलग उल्लेख करना सम्भव नहीं है। मैंने जिन पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली है, उनके कतिपय लेखकों का उल्लेख संदर्भिका में किया गया है और मैं उन सभी का कृतज्ञ हूं। इनके अतिरिक्त बीसियों महानुभावों के भाषणों अथवा लेखों ने मेरे विचारों को प्रभावित किया है, उनके नाम गिनना यद्यपि कठिन है, फिर भी उनके विचार मेरे मस्तिष्क पर छाये रहे हैं और उनका इस पुस्तक में समावेश किया गया है। मैं उन सभी व्यक्तियों का भी अनुगृहीत हूं जिन्होंने इस पुस्तक के वर्ण्य-विषय से सम्बन्धित मेरे कतिपय भाषण सुनने के उपरान्त प्रश्न करते हुए मेरा ध्यान इस पुस्तक की सामग्री के कुछ विशेष स्रोतों की ओर आर्कषित किया तथा उन भाषणों की रचनात्मक आलोचना की।

दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियों ने, विशेष रूप से सह-पुस्तकाध्यक्ष श्री एम० एम० कश्यप तथा श्री एम० एस० त्यागी ने मेरी अत्यधिक सहायता की। उन्होंने मुझे न केवल पुस्तकालय के प्रत्येक विभाग की पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों का पूरा प्रयोग करने की पूर्ण छूट दी अपितु सम्बंधित विषय पर कुछ विशिष्ट पुस्तकों के बारे में सुझाव भी दिये तथा देश के अन्य पुस्तकालयों से वे पुस्तकें मंगाकर भी दीं, जो यहां उपलब्ध नहीं थीं। उनकी इस सहायता एवं सौजन्यता के लिए मैं उनका

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कृतज्ञ हूं। इस पुस्तक के कुछ लेख 'संडे एक्सप्रेस' नामक पत्र में समय-समय पर प्रकाशित भी हो चुके हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में प्रदर्शित अभिरुचि के लिए मैं प्रकाशक तथा मुद्रक का भी अत्यधिक कृतज्ञ हूं।

—लेखक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय-सूची

दो शब्द v

प्राक्कथन vii

आभार प्रदर्शन ix

I. **विषय-प्रवेश** 1

II. **चिकित्सक**

1. धन्वन्तरी—पृथ्वी पर अवतरित चिकित्सक 26
2. भारद्वाज—आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के आद्य गुरु 31
3. आत्रेय—आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के विख्यात अध्यापक 34
4. जीवक—भगवान बुद्ध के चिकित्सक 39
5. पातंजलि—योगविद्या के प्रणेता 45
6. चरक—चिकित्सक 50
7. सुश्रुत—शल्यचिकित्सक 64
8. वाग्भट्ट—एक महान चिकित्सक 75
9. माधवकर—रोग-विषयक निदानशास्त्री 80
10. वृन्द 82
11. द्रघवल—कश्मीर के चिकित्सक 84
12. भावमिश्र 87
13. आनंदराय भारवी—हिंदू चिकित्सा विवेक का चित्रण 89
14. शालिहोत्र—प्राचीन भारतीय पशु चिकित्सा विज्ञान के जनक 94

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

III. ज्योतिर्विद् तथा गणितज्ञ
15. बौधायन—वैदिक युग की वेदियों का ज्यामितिविद् 98
16. गर्ग—नक्षत्रों के गणनाकार 106
17. लगध—भारत के सर्वप्रथम ज्ञात ज्योतिर्विद् 110
18. मेधातिथि—अंकों के अन्वेषक 114
19. आर्यभट्ट—गणित के प्रकांड पंडित 118
20. श्रीसेन—रोमक सिद्धांत के ज्योतिर्विद् 121
21. वराहमिहिर—सर्वोन्मुखी वैज्ञानिक 126
22. ब्रह्मगुप्त—शून्य को उसका पद दिलाने वाले 134
23. भास्कर—महान बीजगणितज्ञ 139

IV. कीमियागर
24. नागार्जुन—महान भारतीय कीमियागर 145
25. एक महान रसायनविद् 150

V. तत्त्वज्ञ-वैज्ञानिक
26. कणाद—प्राचीन युग के परमाणुवादी तत्त्वज्ञ वैज्ञानिक 157
27. कपिल—ब्रह्मांड की सृष्टि सिद्धांत के प्रतिपादक 162
28. गौतम अक्षपद—प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक विधितंत्र के प्रवर्तक 168

VI. विविध
29. खन—प्राचीन कृषिविद् 173
30. भोज—जलपोत-निर्माण के प्राचीन विशेषज्ञ 177
31. जन्तु-जगत् का वर्गीकरण उमास्वाती द्वारा दिया गया 184
हिंदी-अंग्रेजी शब्दावली 188

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विषय-प्रवेश

प्राचीन भारत के विज्ञानों का एक सर्वेक्षण

मैं इस विषय का प्रारंभ ईसा की सातवीं शती के एक सीरियाई पुरोहित ज्योतिषविद् सेबोख़्त की पुस्तक के एक उद्धरण से करना चाहूँगा। उद्धरण इस प्रकार है :—

"अब मैं हिन्दुओं के ज्ञान तथा खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उनके सूक्ष्म अन्वेषणों के बारे में बताऊँगा। उनके ये अन्वेषण यूनान तथा बेबीलन-वासियों के अन्वेषणों से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर हैं। उनकी गणना-प्रणाली की प्रशंसा करना शब्दों की सामर्थ्य से बाहर है—मेरा तात्पर्य नौ अंकों की प्रणाली से है। बहुत से व्यक्तियों का विचार है कि केवल उन्हें ही विज्ञानों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त है, क्योंकि वे ग्रीक-भाषी हैं। ऐसे व्यक्तियों को यदि इन बातों की जानकारी मिल पायी तो उन्हें भी शायद यह विश्वास हो जायेगा कि ग्रीक-भाषियों के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ बोलने वाली जातियों को भी उन्हीं की तरह ज्ञान प्राप्त है, यद्यपि उन्हें इस तथ्य को आत्मसात् करने में कुछ देरी हो जायेगी।"

हम प्राचीन भारत के उन विज्ञानों पर दृष्टिपात करेंगे, जिनसे सेबोख़्त इतना अधिक प्रभावित हुआ था। हम यह भी देखेंगे कि इन विज्ञानों का प्रारंभ कैसे हुआ और उनके समय के पश्चात् उनका क्या हश्र हुआ। इतने व्यापक सर्वेक्षण में मुझे अनिवार्यतः किसी विशेष विज्ञान अथवा किसी व्यक्ति विशेष के योगदान के ब्यौरे को नज़र-अन्दाज़ करना पड़ेगा। मैं विषय का वर्णन उसी परिवेश में करूँगा जिसमें उस विषय का विकास हुआ तथा जिसने उसको प्रभावित किया अथवा परिवेश पर उसका प्रभाव पड़ा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सिन्धु घाटी सभ्यता

सन् 1922 में सिन्धु नदी की निचली घाटियों में सिन्धु प्रान्त के मोहन-जो-दाड़ो तथा पंजाब प्रान्त के हड़प्पा नामक स्थानों पर पुरातत्वीय खुदाई में बहुत ही प्राचीन तथा सुनियोजित नगरों के अवशेषों का अस्तित्व मिला। इन अवशेषों की संस्कृति को सिन्धु घाटी सभ्यता का नाम दिया गया। बाद में इस सभ्यता के अनेकानेक अवशेषों का अन्य विभिन्नों स्थलों पर पता चला—उदाहरणस्वरूप चन्हूदाड़ो, काठियावाड़ के तटवर्ती प्रदेश, सतलुज के किनारे रोपड़ तथा भारत के भीतरी क्षेत्र ग़ाजीपुर और बनारस में। इससे यह स्पष्ट हो गया कि सिन्धु तटवर्ती प्रदेश, पंजाब, उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा गंगा के मैदान के एक भाग समेत एक काफी बड़े क्षेत्र में लगभग समस्त उत्तरी भारत में ही सिन्धु घाटी सभ्यता फैली हुई थी।

सामान्य लक्षणों की दृष्टि से सिन्धु घाटी सभ्यता प्राचीन मैसोपोटैमिया तथा मिस्र की सभ्यता की समकालीन ही समझी गयी। मोहन-जो-दाड़ो की खुदाई में इमारतों की सात विभिन्न परतें पाई गई हैं। इनमें सबसे ऊपरी परत ईसापूर्व 2750 के समय की मानी गई है तथा अन्य परतें ई० पू० 3250 से 2750 के मध्यकाल की। भूमिगर्त जल में डूबी होने के कारण निचली परतों तक नहीं पहुँचा जा सका। यह समझा जाता है कि मोहन-जो-दाड़ो में ई० पू० 2800-2500 की मध्यावधि में सांस्कृतिक गति-विधियाँ और प्रगति अपने शिखर पर थी।

इन नगरों में पाई गयी चौड़ी और सीधी सड़कों, साफ और ढकी हुई नालियों के जाल तथा सुन्दर बने आरामदेह मकानों ने तमाम संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। प्रत्येक मकान में एक स्नानगृह होता था तथा ये मकान विभिन्न आकार की पक्की ईंटों से बने हुए थे। इन खंडहरों को देखते हुए एक अंग्रेज लेखक को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह लंकाशायर के किसी वर्तमान कार्यरत नगर के खंडहरों से घिरा हुआ है। खुदाई में मिले पदार्थों में कई अनाज, सूती कपड़े, औजार, हथियार, घर के बर्तन, सोना, चाँदी, ताँबा और काँसे के गहने, मूर्तियाँ, मिट्टी के बर्तन,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चमकीली और खुदी हुई मोहरें तथा विभिन्न प्रकार के खिलौने भी प्राप्त हुए हैं। खिलौनों के रूप में मिली गाड़ियाँ विशेष रूप से रुचिकर हैं—क्योंकि संसार में अन्य सभी स्थानों पर खोजी गई पहियेवाली गाड़ियों में सबसे पुरानी हैं। तौलने के विभिन्न बाट भी मिले—इनमें सबसे छोटे बाट का वज़न 0.875 ग्राम तथा सबसे बड़े बाट का वज़न 10970 ग्राम के बराबर है। छोटे बाट दो के अनुपात में होते थे और बड़े बाट दस के अनुपात में। सबसे अधिक प्रयोग किये जाने वाले बाट का वज़न 13.64 ग्राम है, जो सबसे छोटे बाट का लगभग 16 गुना है। लम्बाई का ग्राम माप एक क्यूबिट (हाथ) मिला जो 20-62 इंच के बराबर है। विभिन्न दवाइयों में सिलाजीत, कटलफिश (समुद्रफेन) की अस्थियाँ, हिरन तथा बारहसिंगों के सींग, मूँगे तथा नीम वृक्ष (अजैडिरैक्टा इण्डिका) की पत्तियाँ मिली हैं।

निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता कि सिन्धु घाटी के निवासी किस जाति अथवा जातियों के थे क्योंकि खुदाई में कंकालों के अवशेष अत्यल्प तथा अपूर्ण मिले हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे लोग एक चित्रा-कृति लिपि में लिखते थे। अधिकांश विद्वानों का यह विचार है कि वे लोग किसी प्रकार की द्रविड़ भाषा बोलते थे। इन लोगों का सम्पर्क अपने पश्चिम की ओर स्थित अन्य देशों तथा धुर दक्षिण को छोड़ समस्त भारत से भी था।

खुदाई में मन्दिरों के समान धार्मिक पूजा के लिए स्पष्टतया कोई नियत स्थल नहीं मिले हैं किन्तु हड़प्पा में मिली वस्तुओं से उन लोगों के धर्म के कुछ सूत्रों का पता लगता है। घरों में बहुत अधिक संख्या में मिली स्त्री आकृतियों तथा स्त्रियों की मूर्तियों से यह अनुमान लगता है कि वे लोग देवी माता को पूजते रहे होंगे। बहुत-सी मुहरों पर सींग युक्त एक तीन चेहरेवाली नर-आकृति बनी हुई मिली है, यह आकृति एक योगी की मुद्रा में एड़ी से एड़ी मिलाये, टाँगें दुहरी किये हुए बैठी है। एक मुहर में यह योगी-आकृति हाथी, चीता, गैंडा, भैंस तथा हिरनों के एक जोड़े से घिरी हुई दिखाई देती है। आमतौर पर यह कहा जाता है कि यह नर-आकृति महान् देवता शिव का आदि रूप है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि किसी रूप में लिंग-पूजा तथा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वृक्षों की पूजा भी प्रचलित थी ।

सिन्धु घाटी के नगरों को आक्रामक कबीलों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया किन्तु उनके देवी-देवता, रीति-रिवाज इस विनाश से बच गये और इन्हें बाद में आर्यों ने अंगीकार तथा स्वीकार कर लिया, और ये आज भी समस्त भारत में हिमालय पर्वत से कुमारी अन्तरीप तक विद्यमान हैं ।

आर्यों का प्रादुर्भाव

ईसा पूर्व 2000 के लगभग इंडो-यूरोपीयों की एक शाखा—कुछ इंडो-ईरानियों अथवा आर्य क़बीलों ने ईरान तथा उसके आसपास के अपने गृहदेश को छोड़ दिया तथा अफ़गानिस्तान के पहाड़ी दर्रों से होकर उत्तरी भारत में प्रवेश किया । उन्होंने यह पाया कि इस प्रदेश में पहले से ही काली चमड़ी वाले व्यक्ति रह रहे थे । वे द्रविड़ भाषा बोलते थे, उनके अपने देवता थे तथा धार्मिक आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज और संस्कृति भी अपनी थी । वे नगरों में रहते थे और किसी भी दृष्टि से असभ्य नहीं थे । ज्यों-ज्यों आर्य बढ़ते गये, वे इन मूल निवासियों को पीछे की ओर खदेड़ते गये और अन्ततः उन्होंने दक्षिण को छोड़ समस्त भारत की भूमि पर कब्ज़ा कर लिया और द्रविड़ों ने दक्षिण को अपना गढ़ बना लिया ।

इन प्रारम्भिक आर्यों के बारे में हमें प्रमुखतया उनके धार्मिक ग्रन्थों अर्थात् चार वेदों, विशेष रूप से ऋग्वेद एवं अथर्ववेद से ही जानकारी मिलती है । इन ग्रन्थों में उन्होंने अपनी विजय उपलब्धियों तथा अपने सामाजिक संगठन का वर्णन किया है । समाज में उन्होंने व्यक्तियों को चार वर्णों में विभक्त किया—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र । वे अपने इन्द्र और वरुण सरीखे देवताओं को विशेष रूप से बनायी गई वेदियों में नाना प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा तथा प्रार्थना एवं श्लोकों के गायन द्वारा रिझाते थे । इन श्लोकों में से कुछ से अधिकांश उत्तरकालीन भारतीय दर्शनों का उदय हुआ । कुछ अन्य श्लोकों का गायन किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये होता था यथा शत्रु अथवा विरोधी शक्तियों के विरुद्ध अपने देवताओं के हस्तक्षेप की प्रार्थना हेतु, अथवा स्वास्थ्य-लाभ या स्वास्थ्य-रक्षा हेतु, किसी कन्या का प्रेम प्राप्त करने हेतु अथवा अच्छी संतति प्राप्त

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करने हेतु आदि-आदि। मूलत: इन श्लोकों पर विशिष्ट परिवारों अथवा जातियों का स्वाधिकार था। ऋग्वेद के दस खंडों में से अधिकांश इसी प्रकार के 'परिवार खंड' हैं, जिनमें इन परिवारों के पूर्वजों को विभिन्न देवताओं द्वारा प्रदानित रहस्यों का उल्लेख है। इन श्लोकों के स्वामी यदा-कदा इन कविताओं में कहीं-न-कहीं अपना नाम डालकर अपनी इस सम्पत्ति पर अपनी मोहर लगा देते थे। इन व्यक्तियों के लिये एक प्रभावशील श्लोक उतना ही बहुमूल्य होता था जितना कि हमारे लिए एक परमाणु बम का रहस्य। अत: उस श्लोक को एक भेद की भाँति परिवार के पास रखने में प्रत्येक सावधानी बरती जाती थी तथा पिता इस श्लोक को या तो अपने पुत्र को या अत्यंत सुपात्र शिष्य को ही बताता था। आर्यों के धर्मग्रन्थों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन है और इससे प्राय: सभी सहमत हैं कि ऋग्वेद को वर्तमान रूप ईसापूर्व 1000 में मिला, यद्यपि इसमें से बहुत सी सामग्री इससे भी प्राचीन काल अर्थात् लगभग ई० पू० 1500 के समय की है।

वेदों में प्राचीन विज्ञानों की झलकियाँ

वैदिक ग्रन्थों विशेष रूप से अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में मनुष्य के विभिन्न रोगों एवं उनके उपचारों का वर्णन मिलता है। चिकित्सा का कार्य पुरोहित तथा इस विज्ञान के जानकार कुछ अन्य व्यक्ति भी करते थे। यह समझा जाता था कि रोग मनुष्य के विविध प्रकार के पापों की सजा है जो देवताओं अथवा विभिन्न राक्षसों अथवा शत्रु के जादूगरों द्वारा दी जाती है। इन रोगों का उपयुक्त उपचार इन नाराज देवताओं को प्रसन्न करके अथवा शैतानों से संघर्ष करके उन्हें शरीर से निकालकर अथवा नाना प्रकार के तावीज-गंडे पहनने जैसे जादू भरे साधनों द्वारा किया जाता था। इसके साथ ही विभिन्न प्रकार की वनस्पति-औषधियों का अनुभवजन्य ज्ञान भी संबद्ध था। विशेष रोग किन्हीं विशेष देवताओं अथवा विशेष राक्षसों द्वारा ही उत्पन्न होते थे—उदाहरणस्वरूप वरुण के कारण जलोदर रोग उत्पन्न हुआ समझा जाता था; रुद्र अपने नुकीले तीरों से तेज दर्द उत्पन्न करते थे तथा अग्निदेवता यक्ष्मा और ज्वर उत्पन्न करते थे। रोग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लक्षणों को ही रोग समझ लिया जाता था। बार-बार जिन लक्षणों की चर्चा की गई है, उनमें ज्वर, खाँसी, निर्बलता, पेचिश, पीतज्वर, जलोदर, फोड़े, रसौली, मूत्र-बाधा, फालिज आदि हैं। मानव शरीर तथा घोड़ों की कुछ संरचनाओं की बलि चढ़ जाने का वर्णन भी भली-भाँति किया गया है। यजुर्वेद में वर्णन है कि पित्त मनुष्य के शरीर पर ऐसे प्रक्रिया करता है जैसे जल पर अग्नि अर्थात् पित्त शरीर को उष्मा प्रदान करता है। प्राण (श्वास) को जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य तत्त्व और जीवन को गति प्रदान करने वाला समझा जाता था। प्राण केवल श्वास क्रिया को ही नहीं अपितु अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं को भी निदेशित करता था।

वेदों में ज्योतिर्विज्ञान के जिन प्रेक्षणों का उल्लेख है, वे मुख्यतः धार्मिक अनुष्ठानों से ही सम्बन्धित हैं। ऋग्वेद में वर्णन है कि एक वर्ष 12 महीने अथवा 360 दिन का होता है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि पाँच वर्ष के एक युग में 30 दिन का एक तेरहवाँ महीना भी होता है, अर्थात् एक युग में कुल दिन 1830 होते हैं। इसमें सूर्य तथा चन्द्रग्रहण का भी उल्लेख है। ग्रहण राहु द्वारा सूर्य अथवा चन्द्रमा को ग्रस जाने के कारण लगते हैं तथा सोम और रुद्र देवता सूर्य और चन्द्रमा को राहुग्रास से मुक्ति दिलाते हैं। सबसे पहली बार गर्ग ने सूर्य तथा चन्द्रमा के आकाशीयपक्ष के साथ ही विभिन्न नक्षत्रों की गणना की। अथर्ववेद में 28 नक्षत्रों की सूची है किन्तु यजुर्वेद में 27 नक्षत्रों का ही उल्लेख है। लगध ने ई० पू० 900 के आसपास वैदिक युग में किए गए ज्योतिर्विज्ञान के सभी प्रेक्षणों को व्यवस्थित कर उन्हें क्रमबद्ध किया तथा उसे ज्योतिष-वेदांग नामक ग्रन्थ का रूप दिया।

ऋग्वेद युग के लोग सोना, चाँदी, ताँबा जैसी धातुओं के कर्षण तथा कांसे के निर्माण से परिचित थे। उन्हें चमड़ा कमाना, ऊनी वस्त्रों को रंगना तथा किण्वित और मादक पेय पदार्थ यथा सोम और सुरा बनाना भी आता था। यजुर्वेद युग के लोग इनके अतिरिक्त लोहा, सीसा और रांगे को भी जानते थे। यह समझा जाता था कि स्वर्ण का स्वामित्व दीर्घायु प्रदान करता है तथा सीसा जादू-टोने के दुष्प्रभाव को काटता है।

वैदिक-भाषा से यह प्रकट होता है कि बड़े अंकों का आम चलन था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मेधातिथि ने जिन्होंने ऋक्, यजुर् तथा अथर्ववेद की सैकड़ों ऋचाओं की रचना की है, 10-12 तक के अंकों की गणना की। हम यह नहीं कह सकते कि जिस प्रकार यह अंक बोले जाते थे, उसी भाँति लिखे भी जाते थे। विविध शुल्व-सूत्रों में इस बात का खासा प्रमाण है कि वेदयुगीन भारतवासी ज्यामितिक सिद्धान्तों से भली-भाँति परिचित थे। वे विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण में ज्यामिति का उपयोग किया करते थे। बौद्धायन का शुल्व-सूत्र सबसे प्राचीन है तथा ईसापूर्व 500-300 के समय का है।

एक छोर के विचार

कुछ भारतीय विद्वानों ने यह व्याख्या एवं दावा किया है कि वैदिक मुनियों को आधुनिक विज्ञान द्वारा अब तक उपलब्ध ज्ञान तथा इससे आगे की पूर्ण जानकारी थी। इसके विपरीत कुछ प्रारम्भिक यूरोपीय विद्वानों ने वेदों के अधिकांश भाग को आदिकाल की बकवास कहा है। इन दो छोरों के विद्वानों के बीच में मेक्समुलर का निम्न कथन उद्धृत करने योग्य है। उन्होंने 1882 ई० में लिखा, "ऐसे अल्पबुद्धि व्यक्ति भी हुए हैं जिन्होंने भारतीय मस्तिष्क के विकास को अन्य सभी से श्रेष्ठ बताया है। किन्तु मैं इतना ही व्यग्र उस समय हो जाता हूँ जब मैं अन्य विद्वानों को भारत के प्राचीन साहित्य की आलोचना करते देखता हूँ, जैसे यह साहित्य किसी ऐसे शत्रु का प्रतिनिधित्व करता है जिसे विजित करना आवश्यक है तथा जिसके प्रति कोई भी दया नहीं दिखाई जानी चाहिये। वेद बचकाना हैं, मूर्खतापूर्ण एवं अतिरंजित धारणाओं से भरे पड़े हैं, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु यह अत्यरूपता भी रुचिप्रद एवं शिक्षाप्रद है। यदि हम विचार के विभिन्न तरीकों तथा भाषा की कुछ अनदेखी कर दें, तो इनमें से बहुत-सी धारणाओं से हमें सत्यांश तथा प्रकाश की झलक मिलेगी। तब किया क्या जाये? बात साधारण है कि हमें अपनी पूर्व निर्धारित उस धारणा को थोड़े समय के लिए ताक में उठाकर रख देना चाहिये, जिसके आधार पर लोग इसे आदिकालीन मानवता समझते हैं। यदि हम यह पायें कि 3000 वर्ष पहले मनुष्य उन विचारों से परिचित थे जो आज हमें नवीन तथा 19वीं शताब्दी जैसे प्रतीत होते हैं, तब हमारे सामने इन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आदिकालीन असभ्य व्यक्तियों के बारे में अपनी धारणाओं में कतिपय सुधार करने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं है। हमें यह स्मरण करना होगा कि बहुत-सी बातें हैं, जो बुद्धिमान एवं विवेकी व्यक्तियों से छिपायी गई हैं, कभी-कभी बच्चों पर प्रकट कर दी गई हैं।''

धार्मिक आचरण में परिवर्तन

वैदिक युग के आर्य अनिवार्यतः धार्मिक मनोवृत्ति के लोग थे, वह अपने देवी-देवताओं के हेतु अनुष्ठान करते थे। उनके अधिकांश देवी-देवता उन प्राकृतिक घटनाओं के प्रतिनिधि थे जिनका अवलोकन किया जा सकता था। ई०पू० 8वीं शताब्दी के पश्चात् उनके कतिपय बौद्धिक ब्राह्मणों की विचार-धारा में परिवर्तन स्पष्ट होने लगा। इस काल के उपनिषदों में विद्यमान दार्शनिक संवादों से विचारकों के आचरण का यह परिवर्तन स्पष्ट होता है कि वे बाह्य मूर्त संसार के तथा उसकी घटनाओं के स्थान पर आन्तरिक तथा अमूर्त आत्मा पर जोर देने लगे थे। बाह्य को प्रकृति की सभी शक्तियों का स्रोत समझा जाने लगा और मनुष्य की आत्मा को उसका अंश। इस प्रवृत्ति के कारण उनको सामान्य जाने-पहचाने संसार से विरक्ति होने लगी तथा धार्मिक अनुष्ठानों और कर्मकांड के प्रति वह लापरवाह होते गए। इन्द्र तथा वरुण जैसे देवताओं तथा उनके दैवी पुरोहित अग्नि, मित्र एवं बृहस्पति के प्रति उनका पहले जैसा समादर नहीं रहा। इसके विपरीत विचारक केवल ध्यान, क्रमबद्ध आत्मविश्लेषण, प्राणायाम तथा योग के अन्य कठोर मनोवैज्ञानिक अनुशासन द्वारा आत्मा की अप्रशमित चेतनावस्था को प्राप्त करने एवं उसी स्थिति में बने रहने का प्रयास कर रहे थे।

इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारतीय दर्शनशास्त्र की विभिन्न पद्धतियों का प्रतिपादन हुआ। कणाद ने वैशेषिक सूत्रों की रचना की जिनमें उन्होंने परमाणु को सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ का अंतिम एवं मूल घटक बताया है। कणाद इस काल के सर्वप्रथम परमाणुवादी तत्वज्ञ-वैज्ञानिक थे। अक्षपद गौतम ने न्यायसूत्रों का प्रतिपादन किया। किसी घटना अथवा किसी वस्तु की सही पहिचान को स्थापित करने के उन्होंने चार ढंग बताये —प्रत्यक्ष बोध (अवबोधन), अनुमान, तुलना एवं प्रमाण। इस प्रकार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गौतम प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक विधितंत्र के प्रणेता थे। कपिल ने ब्रह्माण्ड के सृष्टि सिद्धांत का प्रतिपादन किया। मैं चाहूँगा कि आधुनिक वैज्ञानिक उनके सिद्धांतों का अध्ययन अवश्य करें और मुझे विश्वास है कि उन्हें यह अध्ययन लाभकर रहेगा। इसी काल में रचित पातंजलि के योग सिद्धांत की ओर आकर्षित होने वाले अनुयायियों की संख्या में आधुनिक काल में भी निरंतर वृद्धि हो रही है।

उपनिषद् काल के उपर्युक्त तथा अन्य सृजनात्मक दार्शनिक अपने युग के अग्रणी बुद्धिजीवी तथा स्वतन्त्र विचारक थे। अधिकांश उत्तरकालीन वैज्ञानिक सिद्धान्त उनकी कृतियों से ही निकले। उन्होंने तत्कालीन पुरोहित वर्ग का विरोध नहीं किया। उनका कार्य एवं अनुसंधान क्षेत्र उस क्षेत्र से बिलकुल ही अलग था जिसमें पुरोहितों का एकाधिकार था। बाह्य संसार अर्थात् यज्ञों के पेचीदा धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा नियंत्रित काल्पनिक लोक की ओर से ये दार्शनिक विमुख हो गये क्योंकि वे इससे कहीं अधिक रोचक तत्त्व की खोज में लगे हुए थे।

पश्चिमी देशों के साथ सम्पर्क

सिन्ध में मोहन-जो-दाड़ो की पुरातात्त्विक खोजों ने स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित कर दिया है कि इस प्रदेश तथा पश्चिमी एशिया के बीच ई० पू० 3000 के आसपास भी सम्पर्क बने हुए थे। ऐतिहासिक काल में भारत के पश्चिम स्थित देशों यथा मिस्र, फ़ारिस, यूनान और रोम का भारत के साथ व्यापार तथा विजय दोनों ही के ध्येय से सम्पर्क स्थापित होने की जानकारी प्राप्त होती है। भारत के पश्चिम तट के क्षेत्रों का समुद्री व्यापार अरब सागर तथा फ़ारिस की खाड़ी द्वारा होता था तथा स्थल मार्ग से ईरान के पठार, रेगिस्तान और दर्रों में से होकर। एकेमेनिद फ़ारिस-वासियों ने ई० पू० छठी शताब्दी में भारत के उत्तर पश्चिम में भारतीय संस्कृति के एक केन्द्र गन्धार समेत सिन्धु की घाटी तक प्रदेश जीत लिया था और उनका आधिपत्य लगभग दो शताब्दियों तक बना रहा। लगभग इसी काल ई० पू० 549-525 में फ़ारिस ने सीरिया, फानिसिया, मिश्र तथा एशिया माइनर में यूनानी बस्तियों को भी जीत लिया था। मिस्र,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यूनान तथा भारत की सभ्यता पर फारिस के इस राजनीतिक नियंत्रण के फलस्वरूप इन देशों के बीच सूचनाओं का कुछ आदान-प्रदान हुआ, किन्तु यह आदान-प्रदान कोई अधिक नहीं हुआ लगता। यह देश भारत की सही भौगोलिक स्थिति से सामान्यत: अनभिज्ञ थे। इन देशों के कुछ इतिहासकारों ने वर्णन किया है कि भारत में ऐसी मानव-जातियाँ रहती हैं जिनकी आँखें, टाँगें तथा हाथ दो से अधिक होते हैं और कई चेहरे होते हैं। संभवतया उन्होंने भारत के पौराणिक देवी-देवताओं के विवरण से यह निष्कर्ष निकाल लिये होंगे।

भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के समय (ई० पू० 327-26) भारत और यूनान के बीच सम्पर्क में और अधिक प्रगति हुई। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों को पीछे खदेड़ दिया था। परन्तु चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक महान् के, जिसने शांतिवादी नीति का अनुसरण किया, शानदार शासन काल की समाप्ति पर यूनानियों ने भारत पर पुन: आक्रमण किया और देश के भीतर अयोध्या एवं चित्तौड़ तक बढ़ आये। शक राजाओं ने भारत के प्रदेश पर यूनानियों के इस नियंत्रण को ई० पू० पहली शताब्दी से पहले ही मिटा दिया, किन्तु फिर भी व्यापारिक आदान-प्रदान का कार्य जारी रहा। इस बात के प्रमाण हैं कि यूनानी विद्वान् भारत आए तथा भारत के विद्वान् यूनान गये। एरिस्टोजेनीस (ई० पू० 320-300) ने उस भारतीय का उल्लेख किया है जो एथेन्स में सुक़रात से मिला था और जब उस भारतीय को यह पता चला कि सुक़रात किसी अलौकिक शक्ति को समझे बिना ही मानव जीवन पर शोध कर रहा है, तो उसने सुक़रात का मज़ाक भी उड़ाया था। यह लगभग उसी समय की बात है जब सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगस्थनीज को भेजा था। यूनानी संस्कृति से प्रभावित रोम साम्राज्य तथा भारत के बीच भी इस प्रकार के सम्पर्क ईसा बाद की तीसरी और चौथी शताब्दी तक चलते रहे।

इन सम्पर्क सूत्रों से यह बात साफ़ हो जाती है कि चिकित्सा शास्त्र तथा खगोल शास्त्र आदि जैसे विभिन्न वैज्ञानिक विषयों से संबंधित भारत और यूनान के बहुत से विचारों में समानता क्यों है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में प्रगति

ई० पू० चौथी शताब्दी से छठी-सातवीं शताब्दी ईसवी के मध्य लगभग एक हज़ार वर्ष का समय बाहरी संसार से विचारों के आदान-प्रदान का समय था। इस काल में यहाँ मौर्य, शक, कुशाण एवं गुप्त वंश के साम्राज्य थे। यह काल भारत की सामान्य समृद्धि तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास का समय था। इस समय में चिकित्सा-शास्त्र, खगोलशास्त्र एवं गणित में अद्भुत प्रगति हुई।

भारत में इस काल में कई विद्याकेन्द्र स्थापित थे जहाँ पर विद्यार्थी बड़ी संख्या में रहकर विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करते थे। इस समय के उत्तरांश में चीनी तीर्थयात्री यूआन-च्वाँग (629-649 ई०) तथा आई सिंग (675-685 ई०) नालन्दा में विद्यार्थी बनकर रहे और उन्होंने इस विद्याकेन्द्र का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।

उन्होंने वर्णन किया है कि नालन्दा एक आवासीय विश्वविद्यालय था, इसमें 8500 विद्यार्थी, 1510 शिक्षक तथा अन्य कर्मचारी थे। यहाँ विद्यार्थी को भोजन, वस्त्र, बिस्तर, शिक्षा तथा दवाई निःशुल्क उपलब्ध होती थी। इस उद्देश्य के लिए इस केन्द्र को राजा तथा अन्य लोक-हितैषी व्यक्तियों से पर्याप्त अनुदान मिलते थे। सैकड़ों ग्राम इस से सम्बद्ध थे और इनका प्रबन्ध इसी केन्द्र के अधीन था। इन ग्रामों से इस केन्द्र को जीवन की बहुत-सी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं। नालन्दा का विद्यार्थी होना अपने आप में सर्वोच्च शैक्षिक गौरव की बात थी तथा नालन्दा का शिक्षार्थी जहाँ भी जाता उसका आदर-सत्कार किया जाता था। शताब्दियों तक नालन्दा के विद्यार्थी एक अविरल धारा के रूप में निरन्तर नेपाल, तिब्बत तथा चीन जैसे विदेशों में कार्य करने के लिये जाते रहे तथा उन्होंने इन देशों को भारत के ज्ञान और उन ग्रन्थों से परिचित कराया, जिनमें यह ज्ञान निहित था। कोरिया, मंगोलिया, तोख़ारा, जापान, चीन और तिब्बत से विदेशी विद्यार्थी अपनी शंकाओं के निदान हेतु नालन्दा आते थे। इनमें से बहुत-से विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों के साथ नहीं चल पाये। और पाठ्यक्रम अधिक कठिन होने के कारण अपना अध्ययन बीच में ही छोड़

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दिया। जो अपना अध्ययन जारी रखते थे, उनमें से भी दस के पीछे केवल दो या तीन विद्यार्थी ही अपने अध्ययन को सफलतापूर्वक समाप्त कर पाते थे। आई-सिंग के समय में नालन्दा में 56 विदेशी विद्यार्थी थे। इस से हमें उस समय में नालन्दा के विद्याकेन्द्र की अत्यधिक ख्याति का कुछ अनुमान होता है जब कि एक देश से दूसरे देश तक यात्रा करना उतना ही दुष्कर कार्य था जितना आधुनिक काल में एवरेस्ट पर चढ़ाई करना।

चिकित्सा विज्ञान

ई० पू० छठी शताब्दी के दौरान तथा इसके भी बहुत बाद में (रावलपिण्डी के निकट) तक्षशिला नामक स्थान पर चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा देने का एक बड़ा केन्द्र था। यहाँ "जगत-प्रसिद्ध" शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। महाबुद्ध तथा सम्राट् बिम्बसार और अजातशत्रु के चिकित्सक विख्यात जीवक ने अपनी शिक्षा इसी केन्द्र में प्राप्त की थी। बड़े नगरों में राजाओं द्वारा चलाये गए बड़े-बड़े चिकित्सालय भी थे जहाँ भोजन और दवाई मुफ़्त मिलती थी। इस प्रकार के चिकित्सालयों का एक चीनी यात्री फाह्यान ने विशेष रूप से उल्लेख किया है। यह यात्री पाँचवीं शताब्दी ई० में गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में भारत आया था। राजप्रासाद में औषधियों के भंडार भरे रहते थे तथा राज्य औषधियों के पौधों की खेती के लिए विशेष वनस्पति-उद्यानों का व्यय भार वहन करता था। महामारी फैलने पर चिकित्सक औषधियाँ बाँटते थे तथा साधु और तान्त्रिक धार्मिक उपचारों का उपयोग करते थे। जब किसी आबादी में चूहों की संख्या अधिक बढ़ जाती थी तब उस स्थान के सभी निवासियों को चूहों को एक निश्चित संख्या में प्रतिदिन पकड़ कर देना होता था।

इस काल के पूर्वार्द्ध में कई ख्यातिनामा चिकित्सक हुए थे जैसे देव-चिकित्सक धन्वन्तरि, जिन्होंने बनारस के राजा देवदास के रूप में अवतार लिया, आयुर्वैदिक चिकित्सा शास्त्र के सबसे प्राचीन जाने-माने गुरु भारद्वाज और आत्रेय तथा प्रसिद्ध चरक एवं सुश्रुत।

इन्होंने चिकित्सा की विभिन्न संकलपनाओं की व्याख्या की। इन धारणाओं की शुरूआत अथर्ववेद में देखी जा सकती है तथा इन्हें हिन्दू

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दर्शन की न्याय एवं वैशेषिक प्रणालियों की सहायता से स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त चरक-संहिता में मानव भ्रूण-विज्ञान, शरीर-रचना विज्ञान, शरीर क्रियाविज्ञान, विभिन्न रोगों और उनके उपचार तथा आयु को दीर्घ करने के उपायों का वर्णन किया गया है। सुश्रुत संहिता अनिवार्यत: शल्य-चिकित्सा का ग्रन्थ है। इसमें बहुत-से कठिन तथा पेचीदा शल्योपचारों का वर्णन किया गया है यथा मूल नाक कट जाने पर नई नाक का बनाना, मूत्राशय से पथरी निकालना तथा उदर की चीरफाड़ कर भ्रूण को गर्भ से निकालना। इस अन्तिम शल्यक्रिया को अब 'सीजिरियन सैक्शन' का नाम दिया गया है। चिकित्साशास्त्र के महान विशेषज्ञों में तीसरे व्यक्ति वाग्भट्ट छठी अथवा सातवीं शताब्दी ई० में हुए। इसी काल में एक और महान् चिकित्सक हुए—शालिहोत्र। इन्होंने घोड़ों के उपचार में विशिष्टता प्राप्त की और इन्हें भारत के प्राचीन पशुचिकित्सा विज्ञान का जनक समझा जाता है। उमास्वाती ने जन्तुओं में ज्ञानेन्द्रियों की उपस्थिति और उनके प्रयोग के आधार पर जन्तुओं की एक सूची तैयार की। इस सूची को जन्तु जगत के वर्गीकरण का एक रोचक प्रयास कहा जा सकता है।

चरक तथा सुश्रुत संहिता एवं यूनान के हिप्पोक्रैटिक तथा चिकित्सा शास्त्र के अन्य ग्रन्थों के बीच पाई जाने वाली समानता इन दोनों सभ्यताओं में हुए विचारों के आदान-प्रदान का प्रमाण है।

खगोल-विज्ञान

ईसा के पश्चात् की कुछ प्रारम्भिक शताब्दियों के दौरान खगोल विज्ञान के क्षेत्र में भारत के खगोल शास्त्रीय साहित्य में एक अत्यधिक तीव्र गति आई जो 400 ई० के बाद स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह तीव्र प्रगति अधिक उन्नत यूनानी खगोल-विज्ञान से सम्पर्क के कारण उत्पन्न हुई। यूनानी खगोल-विज्ञान का प्रभाव सूर्य, रोमक तथा पौलिस जैसे भारत के विभिन्न खगोल सम्बन्धी सिद्धान्तों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गणना सम्बन्धी बहुत-सी यूनानी खगोलीय पद्धतियों का भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार परिष्कार किया गया तथा कुछ यूनानी पारिभाषिकी को ज्यों-का-त्यों ही स्वीकार कर लिया गया। इस समय के भारतीय साहित्य में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यूनानी खगोल विज्ञान एवं वैज्ञानिकों की भरसक प्रशंसा की गई है। 5वीं शताब्दी में आर्यभट्ट भारत के महानतम् खगोल शास्त्री हुए हैं। इन्होंने रूढ़िवादी विचारों का विरोध किया तथा यह स्पष्ट किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमता हुआ एक गोला है, ग्रहण राहु के कारण नहीं होते अपितु चन्द्रमा और पृथ्वी की छाया द्वारा बनते हैं तथा चन्द्रमा अनिवार्यतः अन्धकारपूर्ण है और सूर्य से आलोकित होता है। उनके पश्चात् पंच सिद्धान्त के प्रणेता वराह मिहिर तथा ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के प्रणेता ब्रह्मगुप्त हुए। यह व्यक्ति छठी और सातवीं शताब्दी ई० के थे। यद्यपि यह विद्वान् अपने क्षेत्र में बहुत ही प्रमुख स्थान रखते थे किन्तु इन्होंने पृथ्वी के चक्कर लगाने के तथ्य को यह दलील देकर अस्वीकार कर दिया कि यदि पृथ्वी घूमती होती तो अपने घोंसले से पश्चिम की ओर उड़कर जाने वाले पक्षी अपने घोंसले में तत्काल उसी समय वापिस नहीं आ पाते। भारतवासियों को बीजगणित का काफी अधिक ज्ञान था। इन खगोल शास्त्रियों ने खगोलशास्त्र सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं को हल करने में बीजगणित के ज्ञान का उपयोग किया। यद्यपि उन्होंने कुछ ज्ञान यूनानी स्रोतों से भी ग्रहण किया फिर भी उन्होंने साथ ही स्वतन्त्र रूप से इसका विकास भी किया।

गणित

गणित के क्षेत्र में अंकन की स्थान-मूल्य पद्धति का विकास तथा शून्य की धारणा इस काल के महत्त्वपूर्ण भारतीय योगदान हैं। एक से अधिक अज्ञात पद वाली समीकरणों को हल करने में पर्याप्त चातुर्य दिखाया गया तथा अनिर्धार्य समीकरणों के अध्ययन में तो वह इतने आगे तक जा पहुँचे कि उन्होंने आधुनिक बीजगणित की कुछ खोजों का पूर्वानुमान कर लिया। आर्य भट्ट ने त्रिकोणमितीय की ओर विशेष ध्यान दिया। उनका ज्या (साइन) और शरज्या (वर्सड साइन) का प्रस्तुतीकरण एक असाधारण सुधार था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारत के प्राचीन विज्ञानों का प्रसार

प्राचीन काल में विदेशी भूमियों पर भारत के विज्ञान और विचार-धाराओं का प्रसार यूनान के विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ ही हुआ। विदेशों में भारतीय विद्वानों तथा भारत में विदेशी विद्यार्थियों के भ्रमण के फलस्वरूप इण्डोचीन, चीन, जापान, इण्डोनेशिया, तिब्बत तथा मंगोलिया में भारतीय विज्ञानों का प्रसार हुआ। तिब्बत में तो भारतीय विज्ञान बाद में भी काफी अधिक प्रभाव डालते रहे। अरब देशों में भारतीय विज्ञानों का प्रेषण संस्कृत साहित्य के अरबी अनुवाद तथा परोक्ष रूप से संस्कृत से फारसी में तथा फारसी से अरबी में किए गए अनुवादों द्वारा हुआ। यह कहा जाता है कि आठवीं शताब्दी ई० में, जब सिन्ध खलीफा मन्सूर (753-774 ई०) के सीधे नियन्त्रण में था, वहाँ से विद्वान् बगदाद गये थे तथा अपने साथ ब्रह्मगुप्त की कृतियाँ ले गये थे। अरबी विद्वानों ने संस्कृत पंडितों की सहायता से इन कृतियों का अनुवाद किया। इन अनुवादों के द्वारा अरबवासी भारतीय गणित तथा खगोल विज्ञान से सर्वप्रथम परिचित हुए।

हिन्दू विद्या का दूसरा अन्तर्वाह हारुन (786-808 ई०) के शासन काल में हुआ। बर्माक में मन्त्रीवर्गीय परिवार ने हिन्दू विद्वानों को बगदाद में काम दिया तथा उन्हें अपने अस्पतालों में मुख्य चिकित्सक नियुक्त किया। उनसे संस्कृत की चिकित्साशास्त्र, औषधविज्ञान, विषविज्ञान, सर्प तथा पशु चिकित्सा आदि सम्बन्धित कृतियों का अरबी में अनुवाद भी कराया। अरबवासियों का एक प्रिय विषय था—भारतीय गणित। इसके तुरन्त बाद ही जब सिन्ध बगदाद के राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त हो गया तो अरबवासियों ने इन विद्याओं को ग्रहण करने के लिए अन्य मार्ग अपनाए। और तब उनका ध्यान मुख्यतः यूनानी स्रोतों की ओर गया।

प्राचीन भारत के विज्ञानों के पतन के उत्तरदायी विशिष्ट लक्षण

1

मानव जीवन की समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण में विभिन्न देशों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा कालों में पर्याप्त अन्तर होता है। प्राचीन काल में यूनानवासी सांसारिक वस्तुओं की ओर अधिक ध्यान देते थे, प्राकृतिक घटनाओं से लाभ एवं सुख प्राप्त करने के लिए उनका अध्ययन करते थे तथा जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सामान्यत: आशावादी था किन्तु इसके विपरीत भारतीय दूसरे आगामी संसार पर अधिक ध्यान लगाते थे, वह इस संसार को असार, अस्थायी और मरीचिका (माया) समझते थे। उनका यह दृष्टिकोण निरन्तर विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप उत्पन्न उस समय भारत में व्याप्त दयनीय तथा निराशाजनक वातावरण के कारण बना, अथवा उनका यह दृष्टिकोण स्पष्ट विवेक तथा दृढ़ धारणा के कारण बना, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

जीवन के प्रति इस भारतीय दृष्टिकोण ने प्राचीन भारत के विज्ञानों पर भी प्रभाव डाला।

2

भारत में धर्म, पुराण शास्त्र तथा दर्शन-शास्त्र ने वैज्ञानिक विचारों की अभिव्यक्ति का समर्थन करना तथा उसके लिये सुविधाएँ प्रदान करना कभी भी बन्द नहीं किया। यह देवताओं के अवतार तथा चिंतन एवं विज्ञान क्षेत्र के पार्थिव-मनुष्य के रूप में उन देवताओं के उपयोग से स्पष्ट है। ई० पू० आठवीं शताब्दी के लगभग उपनिषदों में दृष्टिगोचर धर्म तथा दर्शनशास्त्र के दृष्टिकोण में भी अब ध्यान सर्वशक्तिमान ब्रह्म और आत्मा पर केन्द्रित होने लगा था, पौराणिक देवी-देवताओं को तिलांजलि नहीं दी गई अपितु उन्हें ज्यों-का-त्यों रखा गया। इसके परिणामस्वरूप हिन्दू विज्ञान धर्मशास्त्र पौराणिक शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र सभी आपस में मिले हुए हैं और वेदों, पुराणों, आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र के ग्रन्थों तथा परवर्ती तांत्रिक ग्रन्थों में यह शास्त्र इसी मिले-जुले रूप में दिखाई पड़ते हैं। पश्चिमी विद्वानों ने इस घालमेल (खिचड़ी) की अधिक आलोचना की, किन्तु हिन्दू जीवन पद्धति में इसका एक स्पष्टीकरण उपलब्ध है। हिन्दू विचार धारणा के अनुसार खोजबीन का वही विषय अध्ययन योग्य होता है जो विद्यार्थी जीवन को नियमित करने में सहायक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हो ताकि यह पूर्णता की अवस्था अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो सके। इस प्रकार की धारणा पातंजलि के योग-सिद्धान्त में स्पष्ट दिखाई देती है। इनमें शरीर स्वस्थ रखने के विज्ञान की जानकारी तथा मनोविज्ञान के मानसिक अनुशासन को सांख्य दर्शन के साथ मिला दिया गया है। और इस सांख्य दर्शन का अन्तिम धार्मिक उद्देश्य आत्मा की मुक्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करना है। यही तांत्रिक कृतियों में देखा जा सकता है। इन कृतियों में पारे, स्वर्ण तथा अन्य यौगिकों की रसायनिकी का ध्येय मानव शरीर को स्वस्थ बनाए रखना है तथा रसायनिकी के इस ज्ञान का अन्तिम उद्देश्य भी उसी धार्मिक लक्ष्य की उपलब्धि है। किन्तु यह दृष्टिकोण उस समय भारतीय विज्ञानों की प्रगति में सहायक नहीं हो पाया।

3

आज भी भारतवासी इस प्राचीन ज्ञान को श्रद्धास्पद एवं पवित्र समझते हैं। यही प्राचीन युग वर्तमान तथा भविष्य के लिये एक आदर्श बना रहा। इसके अतिरिक्त लोकोत्तर सत्य से सीधे सम्पर्क का दावा करने वाले ईश्वर प्रेरित गुरुओं के कथनों को स्वीकार करने में भारतवासियों की तत्परता ने निश्चित रूप से प्रयोगात्मक कार्य क्षेत्र में नवीन विकास की प्रगति में बाधा डाली।

4

यद्यपि प्राचीन भारत में विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए तक्षशिला तथा नालन्दा जैसे स्थानों पर बड़े-बड़े संस्थान थे, परन्तु विज्ञान के अध्यापकों ने आमतौर पर अपनी शिक्षाओं द्वारा लोकप्रिय होने का इरादा कभी नहीं किया। ज्ञान एवं बुद्धिमत्ता को प्राणी की उच्चतर अवस्था प्राप्ति का साधन समझा जाता था न कि सामान्य जानकारी की कोई वस्तु। ज्ञान की सतर्कता से रक्षा की जाती थी तथा इसे कम ही बताया जाता था। ज्ञान के स्वामित्व को, जिसके कारण शक्ति भी प्राप्त हो जाती थी, प्राचीन काल में परिवार की पैतृक सम्पत्ति में सर्वाधिक बहु-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मूल्य वस्तु समझा जाता था। पिता यह ज्ञान केवल अपने ज्येष्ठ पुत्र अथवा किसी सुपात्र शिष्य को ही देता था। शिष्य को चुनते समय गुरु सर्वप्रथम यह निर्णय करता था कि भावी शिष्य में वांछित आध्यात्मिक योग्यता है या नहीं; वह सामाजिक और शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करता या नहीं; ज्ञान से लाभान्वित होने के लिए परिपक्व है या नहीं; तथा स्वभाव से गुरुचरणों में स्थान देने के लिए उपयुक्त है अथवा नहीं। लाभकर ज्ञान से सम्बन्धित पुरातन गोपनीयता का यह प्रतिरूप काफी बाद तक भी ज्यों का त्यों ही चलता रहा।

5

वैदिक काल के दौरान यद्यपि विभिन्न जातियों की सामाजिक व्यवस्था प्रचलित थी किन्तु यह व्यवस्था अधिक कठोर नहीं थी। नीची जाति का कोई व्यक्ति अपने निजी प्रयास एवं उपलब्धि द्वारा उच्च जाति में प्रवेश पा सकता था। इस प्रकार अपना निजी विकास करने के लिए तथा समाज सेवा को लाभान्वित करने के लिए कुछ प्रेरणा तो थी ही, किन्तु जाति प्रथा कठोर होने पर उत्तर काल में यह प्रेरणा समाप्त प्रायः हो गयी।

इसके अतिरिक्त उपयोगी कलाएं एवं विज्ञान क्षेत्र में दस्तकारियों को छोड़कर ब्राह्मण ही लगे रहते थे और निम्न जातियाँ इन कार्यकलापों में कोई भाग नहीं लेती थीं। उत्तर काल में यह ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग अपनी धार्मिक महत्ता के कारण अत्यधिक अहंकारी एवं मिथ्याभिमानी हो गया तथा शारीरिक श्रम को अशोभनीय समझने लगा। उन्होंने बहुत-सी ललित कलाओं को निम्न जातियों के व्यक्तियों को सौंप दिया। तत्पश्चात् इन निम्न जातियों ने इन कलाओं को खूब अच्छी तरह सीखा। और इस क्षेत्र में अद्भुत चातुर्य का प्रदर्शन किया। किन्तु ये जातियाँ अशिक्षित होने के कारण बहुत-सी घटनाओं के कारणों और कारक से अनभिज्ञ थीं। परिणामतः खोजबीन करने की भावना धीरे-धीरे जाती रही।

6

आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में सुश्रुत के काल में मनुष्य के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मृत शरीर की चीर-फाड़ चिकित्सा विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। किन्तु उत्तर-काल में किसी शव का स्पर्श मात्र ही ब्राह्मण के धार्मिक व्यक्तित्व को अपवित्र करने के लिए पर्याप्त समझा जाने लगा। वाग्भट्ट के तुरन्त बाद ही नश्तर को हाथ से छूने तक को भी हतोत्साहित किया गया। फलस्वरूप शरीररचना विज्ञान तथा शल्य-चिकित्सा का प्रचलन और प्रयोग कम हो गया तथा हिन्दुओं के लिए यह विज्ञान सभी प्रयोजन और उद्देश्यों के हेतु मृत विज्ञान के समान हो गये। बुद्ध मत का प्रसार भी शल्य-चिकित्सा में नश्तर को प्रयोग न करने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण है।

7

प्राचीन भारत की अधिकांश वैज्ञानिक तथा अन्य पाण्डुलिपियाँ संस्कृत भाषा में लिखी गयी थीं। इन पांडुलिपियों की कुछ विशेषताओं का एलबेरुनी (1031 ई०) ने बहुत सही वर्णन किया है। उसने लिखा हैं, "हिन्दुओं की वैज्ञानिक पुस्तकों की रचना विभिन्न प्रकार के प्रिय छंदों में की गई है। इन छंदों द्वारा वह अपनी रचनाओं को बिलकुल ज्यों-का-त्यों ही सुरक्षित रखना चाहते हैं ताकि इसमें कोई वृद्धि अथवा कमी करके इन्हें भ्रष्ट न किया जा सके। इन छंदों को मौखिक याद करने में भी सुविधा रहती है, क्योंकि ये उसे ही प्रामाणिक समझते हैं जो हृदयंगम हो जाता है, उसे नहीं जो लिखित है। अब यह सर्व-विदित ही है कि सभी छान्दिक रचनाओं में बहुत कुछ सामग्री ऐसी होती है जो छन्द का वज़न पूरा करने के लिए भरी जाती है तथा एक प्रकार के जोड़-जाड़ का कार्य करती है। और इस प्रकार छन्दों में अनिवार्य रूप से शब्दों का पर्याप्त बाहुल्य हो जाता है। इसी कारण एक ही शब्द का कभी एक अर्थ होता है तो कभी दूसरा।

"इसके अतिरिक्त भारतीय लिपिक लापरवाह होते हैं तथा सही और भली-भांति मिली हुई प्रतिलिपि बनाने का कष्ट भी नहीं करते। परिणाम यह होता है कि लेखक के मानसिक विकास के उच्चतम निष्कर्ष लिपिकों की लापरवाही के कारण नष्ट हो जाते हैं और उनकी पुस्तक की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पहली अथवा दूसरी प्रतिलिपि में इतनी अधिक त्रुटियाँ हो जाती हैं कि मूल पाठ बिल्कुल ही नया सा प्रतीत होता है, जिसे कोई भी विद्वान् तथा विषय से परिचित व्यक्ति चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, उसे बाद में समझ ही नहीं पाता।''

8

इन लक्षणों में कतिपय अन्य लक्षण भी जोड़े जा सकते हैं, जिनका उल्लेख एलबेरुनी (1031 ई०) ने किया है। एलबेरुनी का वर्णन थोड़ा-बहुत पक्ष-पातपूर्ण हो सकता है और शायद उन्होंने इस पर अधिक जोर दिया है, फिर भी उनका विवरण वास्तविकता से ज्यादा दूर नहीं है। उन्होंने लिखा है, ''हिन्दुओं का विश्वास है कि उनके देश, उनके राष्ट्र, उनके राजा, उनके धर्म, एवं उन के विज्ञान के समकक्ष अन्य कोई नहीं है। वे दम्भी, मूर्ख, अहंकारी, अभिमानी तथा स्थिरमति हैं। स्वभावतः ही वे जो कुछ जानते हैं उसके सम्प्रेषण में कंजूसी करते हैं। विदेशियों की बात ही क्या, अपने देश के लोगों में से अन्य जाति के व्यक्तियों से भी अपने ज्ञान को छिपाने में यह लोग अत्यधिक सावधानी बरतते हैं। उनमें इतना दंभ है कि यदि आप उनसे खुरासान अथवा पेरसिस के किसी विज्ञान अथवा विद्वान् का वर्णन करें तो वे आपको अज्ञानी एवं झूठा दोनों ही समझेंगे। यदि वे विदेशों की यात्रा करें तथा अन्य राष्ट्रों से मिलें-जुलें तो उनके ये विचार शीघ्र ही परिवर्तित हो जाएँगे क्योंकि उनके पूर्वज वर्तमान पीढ़ी के समान संकीर्ण विचारों के नहीं थे। उनके एक विद्वान् वराहमिहिर ने एक स्थान पर जिसमें वह लोगों से ब्राह्मणों का आदर करने को कहता है, लिखा है, ''यूनानी यद्यपि अपवित्र हैं किन्तु उनका आदर किया जाना चाहिए, क्योंकि वे विज्ञानों में दक्ष हैं तथा इस क्षेत्र में अन्य व्यक्तियों से आगे हैं।''

9

एलबेरुनी ने आगे लिखा है, ''खगोल विज्ञान उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि इस विज्ञान से उनका धर्म विभिन्न ढंगों से जुड़ा हुआ है। यदि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कोई व्यक्ति खगोलज्ञ की उपाधि प्राप्त करना चाहता है तो उसे केवल वैज्ञानिक अथवा गणितीय खगोल का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसे फलित ज्योतिष का ज्ञान होना भी आवश्यक है । हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तकों तथा उनकी स्मृति-संहिता-पुराणों में संसार के आकार के बारे में जो वाक्य दिये हुए हैं, वह वाक्य उनके खगोल शास्त्रियों को ज्ञात वैज्ञानिक सत्य के बिलकुल ही विपरीत हैं । जानता इन ज्योतिषियों को बहुत चाहती है, उनको श्रेष्ठ व्यक्ति समझा जाता है । उनके दर्शन शुभ माने जाते हैं और उनका यह दृढ़ विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात् सभी ज्योतिषियों को स्वर्ग प्राप्त होता है, उनमें से कोई भी नरक में नहीं जाता । प्रतिदान स्वरूप ज्योतिषी यह चाहते हैं कि लोग उनके लौकिक विचारों को सत्य स्वीकार करें, लोग स्वयं को उनके सदृश कर लें, भले ही उनका ज्ञान सत्य से कितना ही अधिक दूर क्यों न हो । इसी कारण इतने लम्बे समय में दोनों प्रकार के सिद्धांत—आम प्रचलित तथा वैज्ञानिक सिद्धांत परस्पर मिश्रित हो गये हैं तथा ज्योतिषियों के सिद्धांत अस्तव्यस्त हो गये हैं एवं उलझ गये हैं—विशेष रूप से ऐसे लेखकों के सिद्धांत जो साधारणतया पूर्ववर्तियों की नक़ल करते हैं जो परम्परा को विज्ञान का आधार मान कर चलते हैं तथा इन्हें स्वतन्त्र वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय नहीं बनाते और ऐसे लेखक बहुमत में हैं ।"

एलबेरुनी ने आगे कहा है, "विज्ञान के विकास के लिए यह आवश्यक था कि राजा-महाराजा विज्ञान को प्रोत्साहित करें, विद्वानों को जीवन की दैनिक आवश्यकताओं एवं चिन्ताओं से मुक्त रखें तथा उनकी शक्ति को और अधिक प्रसिद्धि तथा अनुमोदन प्राप्त कराने के लिए प्रोत्साहित करें । यह आकांक्षा ही मनुष्य के स्वभाव का सार है । किन्तु भारत में वर्तमान काल में इस प्रकार की सुविधाएं नहीं हैं । वहाँ परिस्थिति इसके विपरीत है, अतः यह नितान्त असम्भव ही है कि वहाँ इस समय किसी नये विज्ञान अथवा किसी नये प्रकार के अनुसंधान का प्रादुर्भाव हो सके । इस समय वहाँ विज्ञान के नाम पर बीते हुए श्रेष्ठतर काल के थोड़े-बहुत अवेशष मात्र ही मिलते हैं ।"

उत्तरी भारत में मुसलमानों के एक के पश्चात् एक आक्रमणों के फल-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वरूप विज्ञान की यह अवनति और तेज़ी से हुई। इन आक्रमणों का हिन्दू समाज पर उस समय पड़े प्रभाव का एलबेरुनी ने इन शब्दों में वर्णन किया है, "महमूद ने देश की समृद्धि एवं वैभव को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया और वहाँ उसके अनोखे कारनामों के कारण हिन्दू सभी दिशाओं में धूल के कणों के समान बिखर गये और एक बीती हुई गाथा मात्र ही रह गये। यही कारण है कि हिन्दू विज्ञान देश के उन मार्गों से अलग हट गया है जो हम ने जीते हैं तथा ऐसे स्थानों पर जा पहुँचा है, जहाँ हमारे हाथ अभी नहीं पहुँच सकते।"

पुनर्जीवन (पुनरुद्धार)

दक्षिणी और पश्चिमी भारत में विज्ञान का कुछ पुनरुद्धार हुआ क्योंकि ये भाग मुस्लिम आक्रमण से आमतौर पर अप्रभावित रहे। आठवीं शताब्दी से आगे कीमिया के क्षेत्र में अधिकाधिक धात्विक यौगिक तैयार किये गये और उनका औषधि के रूप में प्रयोग किया गया। इन यौगिकों में सबसे महत्त्वपूर्ण पारे के यौगिक थे। इनका प्रयोग जीवन को दीर्घायु करने तथा चिरन्तन यौवन और अभेद्यता प्रदान करने के लिए किया जाता था। यह कार्य तान्त्रिक सम्प्रदाय नामक धार्मिक दर्शन की प्रेरणा के फल-स्वरूप हुआ। इस दर्शन का 1300 ई० तक समाज पर अत्यधिक प्रभाव रहा। भारत के एक महान् कीमियागर नागार्जुन थे, जो आठवीं और दसवीं शताब्दी ई० के मध्य हुए बताये जाते हैं। चिकित्साशास्त्र के अन्तर्गत माधवकर ने रोगी के निदान क्षेत्र में और वृन्द ने रासायनिक यौगिकों के प्रयोग क्षेत्र में योगदान किया। सोलहवीं शताब्दी में भवमिश्र ने उपदंश रोग का वर्णन किया है जो भारत में तभी प्रविष्ट हुआ था। उन्होंने इसे फिरंग रोग कहा क्योंकि यह उस समय भारत में आये पुर्तगाली व्यक्तियों से फैला था। मध्यकालीन भारत में बारहवीं शताब्दी में भास्कर महान् गणितज्ञों में अन्तिम थे।

उक्तोल्लेखित तथा अन्य विद्वानों का योगदान उन शताब्दियों के दौरान विभिन्न विज्ञानों के क्षेत्र में व्याप्त सामान्य अंधकार में कतिपय चमकदार धब्बों के समान था। भारतीय विद्वानों ने अपनी शक्ति का अधि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कांश उपयोग अपनी प्राचीन परम्पराओं के बचाव में किया।

यूरोपीय देशों में पुनर्जागरण

इधर भारतीय विज्ञानों का निरन्तर पतन हो रहा था और यह ह्रासोन्मुखता काफी समय तक जारी रही, उधर यूरोप के देशों में तर्कपूर्ण यूनानी विज्ञानों के प्रभाव के अन्तर्गत कोपरेनिक्स, कैपलर, गैलिलियो, न्यूटन, बॉयल, लेवाइजर, डाल्टन, विसेलियस तथा हार्वे ने वैज्ञानिक अध्ययन को बिल्कुल ही नया मोड़ दिया। धार्मिक अंधविश्वासों तथा मताग्रहों से लड़ते हुए वे आगे बढ़ते गये। दुःख की बात है कि भारत में ऐसा कभी न हो पाया।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय शिक्षण

18वीं शताब्दी के अन्त तथा 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, भारत में एक हिन्दू विद्यार्थी का अध्ययन सामान्य साहित्य तक सीमित था, जिसमें व्याकरण, कोशकला, काव्य, नाटक तथा हिन्दू विधि, एवं तर्कशास्त्र सम्मिलित होते थे। हिन्दू विद्या का विद्वान् सामान्यतः एक वैयाकरण ही होता था और वह शब्दों और उनके रूपों के अर्थों में खोया रहता था। प्राचीन विशेषज्ञों की टीका करने में समर्थ होता था तथा प्राचीन विद्या की तर्कता एवं सूक्ष्म विभेदीकरण का मूल्यांकन करने के योग्य होता था और इस प्रकार वह अनिवार्यतः विवादों में उलझा रहता था। कुछ विद्वानों में पैनी तथा सर्वोन्मुखी प्रतिभा विद्यमान थी। वे सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा प्रवाहमय संस्कृत बोलते थे। ब्राह्मणों ने ज्योतिष-शास्त्र में चातुर्य दिखाया, पंचांगों की रचना की तथा ग्रहणों का हिसाब लगाया। आयुर्वैदिक चिकित्साशास्त्र का व्यवहार उसी ढंग में होता रहा जैसा चरक तथा सुश्रुत के काल में होता था। 1800 ई० में विद्या के पाठ्यक्रम, प्रवृत्ति तथा रीतियों में उनसे कोई विशेष अन्तर नहीं था जिसका प्रचलन सात सौ वर्ष पूर्व मुस्लिम आक्रमण के समय था।

प्राचीन महिमा की खोज

18वीं शताब्दी से पहले प्राचीन भारतीय इतिहास अथवा विज्ञान

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की जानकारी नहीं के बराबर थी तथा अंग्रेज़ी इतिहासकारों का दृष्टिकोण यह था कि हिन्दू सदा से ही इसी दयनीय दशा में रहते आए हैं जिसमें अंग्रेज़ों ने उन्हें पाया है। यह बात जानना भी रोचक है कि उस समय भारतीय स्वयं ही अपने भूत के बारे में बहुत ही कम परिचित थे। विलियम जोन्स, प्रिंसैप, वोहर्टलिक, मैक्समूलर, विल्सन, फर्गुसन, राजेन्द्र लाल मित्रा जैसे प्रारम्भिक प्राच्य विद्वानों की कृतियों तथा 1861 में शुरू की गई पुरातात्विक खोजों ने शिक्षित भारतीयों के समक्ष प्राचीन भारत की विगत महिमा तथा महानता की बहुरंगी तस्वीर प्रस्तुत की।

प्राचीन भारतीय विज्ञानों के बारे में दूसरे छोर के विचार

किन्तु अति-उत्साही राष्ट्रीय भावना के प्रभाव के अन्तर्गत इस खोज ने एक अनुचित मोड़ ले लिया जिसका परिणाम यह निकला कि कुछ विशेष व्यक्तियों ने यह सिद्ध करने के लिए प्रत्येक प्रयास किया कि प्राचीन भारत विज्ञान क्षेत्र में सभी से आगे था। कतिपय भारतीय विद्वानों ने यह सिद्ध करने के लिए काफी मेहनत की है कि जो कुछ आज आधुनिक विज्ञान को विशद एवं पेचीदा उपकरणों की सहायता से ज्ञात हुआ है, वह प्राचीन भारतवासियों को बिना किसी उपकरण की सहायता के ही ज्ञात था क्योंकि उनमें अपार अन्तर्दर्शी शक्ति थी। यह विद्वान् कहते हैं कि प्राचीन भारतवासी केवल वायुयान और बम बनाने में ही समर्थ न थे अपितु वे ग्रहों तथा तारों के मध्य बाह्य अंतरिक्ष में झाँकने तथा उसके गुण जानने में भी समर्थ थे। यह दलील देकर कि प्राचीन भारतीय एक ही शब्द को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न वस्तुओं के अर्थ में प्रयोग करते थे इन विद्वानों ने अपनी कल्पना को खुली छूट दे दी तथा अपनी इच्छानुसार उसकी व्याख्या करके तथा उन्हीं के कथनानुसार शब्दों के छिपे अर्थ खोज कर उन्होंने प्राचीन समय के ज्ञान को अत्याधुनिक रूप दे डाला है। उदाहरण स्वरूप चिकित्सा क्षेत्र में एक प्रकार की वायु (वात)—प्राण की व्याख्या स्नायविक प्रतिवर्ती क्रिया के रूप में की गई है। शरीर के एक अनिवार्य पदार्थ (धातु) ओजस् को श्वेतक बताया गया है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। इससे कोई भी व्यक्ति इनकार नहीं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कर सकता कि जिस प्राचीन परिवेश में उनका प्रतिपादन किया गया, उसके अनुसार ये प्राचीन धारणाएँ बिल्कुल तर्कपूर्ण हैं। किन्तु वे प्राचीन विद्वान् उन पदार्थों और घटनाओं के नाम तथा उनके बारे में कैसे सोच और जान सकते थे जिनका प्रदर्शन आधुनिक उपकरणों की सहायता से अब हुआ है। फिलिओजेट ने सही ही कहा है, "इस प्रकार के अति-उत्साही विद्वान् एक अच्छी बात के पक्ष में एक बुरी दलील दे रहे हैं।"

दूसरे सिरे पर कतिपय यूरोपीय तथा अन्य प्राच्यविदों की उक्तियाँ हैं, जो यह घोषणा करते हैं कि प्राचीन भारतीय विज्ञानों के बारे में सभी बातें गल्पमात्र हैं, इन विज्ञानों में जो थोड़े-बहुत तर्कपूर्ण तत्त्व उपलब्ध होते हैं वे सभी यूनान, रोम और अरब जैसे विदेशी स्रोतों से उधार लिए हुए हैं। इस छोर के दृष्टिकोण का कारण खोजना भी खास कठिन नहीं है। लम्बे समय तक राजनीतिक दासता तथा भौतिक शक्ति के अभाव के कारण पश्चिमी राष्ट्रों की दृष्टि में भारत एक अति हीन स्थिति में पहुँच गया था और उन राष्ट्रों के इतिहासकार भारत के प्राचीन का अनुमान भी उसके वर्तमान से ही लगाते थे।

सारांश

किसी भी व्यक्ति द्वारा यह विश्वास करना कि विज्ञान का जन्म केवल यूनान और यूरोप ही में हुआ, अन्य किसी स्थान पर नहीं, अनुचित है। अब यह निश्चित रूप से ज्ञात हो चुका है कि जब यूरोप ईसा पश्चात् की प्रारम्भिक शताब्दियों के अन्ध-युग से गुज़र रहा था, उस समय भारतीय विज्ञान विकसित हो चुके थे तथा उन्होंने पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त कर ली थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पृथ्वी पर अवतरित चिकित्सक :

धन्वन्तरि

सुश्रुत के नेतृत्व में पावन ऋषियों का एक दल धन्वन्तरि के अवतार देवदास के बनारस स्थित आश्रम में गया। आदर के साथ उन्हें सम्बोधित करते हुए सुश्रुत बोले, "हम देख रहे हैं कि मनुष्य जाति अपने शरीर एवं मस्तिष्क के रोगों के कारण कष्ट और पीड़ा भोग रही है। बाहर से प्रवेश करने वाले अथवा उन्हीं के शरीर के भीतर से उठने वाले रोगों के कारण लोग निरुत्साहित (उदास) दिखायी पड़ते हैं। यद्यपि दैवी शक्तियाँ उनकी रक्षा करती हैं फिर भी वे इस प्रकार रुदन करते हैं जैसे उनका कोई भी रक्षक नहीं है। इस दृश्य से हमें कष्ट होता है। प्राणिमात्र के हेतु हम सभी आपसे आपके परमपावन आयुर्वेद (दीर्घ आयु के सिद्धान्त) के ज्ञान को सुनने के लिए आपके पास आए हैं। हमें ऐसी शिक्षा दीजिए जिसके द्वारा हम स्वास्थ्य के इच्छुक व्यक्तियों के रोगों का उपचार करना सीख जाएँ, तथा जिससे हम अपनी आयु को भी दीर्घ कर सकें। इसी ज्ञान पर इस संसार तथा आगामी संसार का कल्याण निर्भर है। इसी उद्देश्य हेतु हम शिष्यों के रूप में परम पूजनीय के समक्ष उपस्थित हुए हैं।"

पवित्र अवतार ने इस सम्बोधन का उत्तर इस प्रकार दिया, "मेरे बच्चो ! तुम सब का स्वागत है। तुम सब बिना किसी परीक्षा के ही मेरी शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो। मैं तुम्हें तथ्य, ज्ञान, सिद्धान्त और अनुरूपता के आधार पर शल्यतन्त्र के विज्ञान की शिक्षा दूँगा। ध्यान से सुनो।"

तत्पश्चात् उन्होंने अपनी शिक्षाएँ बताईं, जिन्हें बाद में सुश्रुत ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपनी संहिता में सम्मिलित किया। 'सुश्रुत संहिता' उक्त कहानी से ही प्रारम्भ होती है।

धन्वन्तरि का जन्म

धन्वन्तरि के जन्म के बारे में विभिन्न पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार अमृत प्राप्ति हेतु देवताओं एवं राक्षसों द्वारा किए गए समुद्र-मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों में धन्वन्तरि भी एक थे। धन्वन्तरि को ब्रह्माण्ड के पालक विष्णु का एक अंश एवं मृत्यु के देवता को विजित करने वाले शिव भगवान का शिष्य समझा जाता है। इस प्रकार उनमें दो विवेकों का संयोग है—एक दीर्घायु प्राप्त करने एवं उसे सुरक्षित रखने का ज्ञान तथा दूसरे रोगों को नियंत्रित एवं उनका उपचार करने की क्षमता।

एक अन्य कथा के अनुसार यह कहा जाता है कि एक बार मुनि गालवण पूजापाठ के लिए एक विशेष प्रकार की घास 'कुश' की खोज में वनों में गए। वहाँ वे बुरी तरह थक गए और उन्हें ज़ोर की प्यास लगी। उन्हें वहाँ जल न मिला और वह वन से बाहर आ गए। वहाँ उन्हें काँख में जल से भरा घड़ा उठाये अपने घर की ओर लौटती हुई एक युवा कन्या मिली। उन्होंने उस कन्या से कहा, "मुझे प्यास लगी है। मुझे पानी पिलाकर मेरे जीवन की रक्षा करो।" उसने अपना घड़ा मुनि की ओर बढ़ा दिया। प्यास शान्त हो जाने पर मुनि प्रसन्न हो गए और उन्होंने उसे एक योग्य पुत्र की माता होने का आशीर्वाद दिया। लज्जा से उसका चेहरा लाल हो गया। उसने मुनि को बताया कि वह अभी तक अविवाहिता है, उसकी जाति वैश्य है और नाम वीरभद्र है। मुनि ने उससे ऋषियों के आश्रम तक अपना अनुसरण करने का आग्रह किया। आश्रम में ऋषियों ने निश्चय किया कि इस कन्या को धन्वन्तरि को जन्म देना चाहिए। अतः उन्होंने घास का एक पुतला तैयार किया, उसे वीरभद्र की गोद में फेंक दिया तथा वेद मंत्रों के उच्चारण से उस में जीवन डाल दिया।

धन्वन्तरि को, जिनकी माता वीरभद्र और पिता मुनि गालवण थे, देवता के समान आदर प्राप्त हो तथा उनके उपचार पर लोग विश्वास कर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सकें, संभवतया इसी उद्देश्य के लिए उक्त कहानी की रचना की गई होगी।

ऐसा कहा जाता है कि धन्वन्तरि ने अश्विनीकुमार की तीन कन्याओं से विवाह किया और चौदह पुत्रों को जन्म दिया। उन्होंने सुश्रुत तथा अन्य बहुत से विद्यार्थियों को शल्य-चिकित्सा की शिक्षा दी।

सर्पों की देवी से द्वन्द्व युद्ध

पुराणों में धन्वन्तरि तथा सर्पों की देवी में हुए द्वन्द्व युद्ध से संबंधित एक कथा है। इस कथा में घाव भरने की कला की सीमाओं तथा प्राचीन भारत में जादू एवं धार्मिक अभ्यास के साथ उक्त कला के सम्बन्ध का सुन्दर वर्णन किया गया है।

एक बार धन्वन्तरि अपने एक हजार शिष्यों के साथ हिमालय में कैलाश पर्वत पर भ्रमण कर रहे थे। वहाँ उन्हें एक दैत्याकार सप मिला। वह उनकी ओर इस प्रकार झपटा जैसे वह उन पर आक्रमण कर उन्हें निगलना चाहता हो। किन्तु धन्वन्तरि के पास सर्पों को जीतने की जादू-शक्ति थी, अतः उन्होंने उस सर्प की कोई चिन्ता नहीं की। किन्तु उनके एक दम्भी शिष्य ने अपने जादू-टोने से उस सर्प को वश में कर लिया, उसका विष निकाल लिया तथा उस अमूल्य मणि को फेंक दिया जो सर्पों के फन में विद्यमान मानी जाती है। सर्प शक्तिहीन हो गया तथा गति-हीन होकर पड़ गया। शक्तिशाली सर्पराज वासुकी ने अपनी जाति के प्रति इस अनाचार का समाचार मिलने पर विषैले साँपों की एक सेना भेज दी जिन्होंने अपनी फुंकार से धन्वन्तरि के सभी शिष्यों को निर्जीव कर दिया। धन्वन्तरि ने अपने जादू-टोने द्वारा तथा माता वनिता के पुत्र एवं विष्णु के वाहक पक्षी गरुड़ पर ध्यान केन्द्रित कर अपने शिष्यों पर अमृत की वर्षा करा दी और शिष्य पुनर्जीवित हो उठे। साथ ही उन्होंने अपने जादू बल से सभी सर्पों को निर्जीव कर दिया, फलस्वरूप सर्पराज के पास यह समाचार पहुँचाने के लिए कोई भी सर्प शेष नहीं रहा। किन्तु वासुकी को इस घटना का आभास हो गया। उन्होंने सर्पशक्ति की सर्वोच्च प्रति-निधि देवी मनसा का सहायता हेतु आवाहन किया। देवी मनसा उस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनंत शेषनाग की बहन थी जिसके फन पर यह ब्रह्मांड टिका है। मनसा सर्पों के प्रति प्रदर्शित अनादर तथा उन्हें हानि पहुँचाने वाले से घृणा करती थीं। अतः वे क्रोधित हो उठीं तथा शत्रु को मिटाने के इरादे से उस घटनास्थल की ओर चल पड़ीं। उस युद्धस्थल पर पहुँचकर सर्पों की देवी ने अपनी एक दृष्टि द्वारा ही गतिहीन सर्पों में जीवन का संचार कर दिया तथा धन्वन्तरि के शिष्यों को इस प्रकार दंशित किया कि धन्वन्तरि भी उन्हें पुनः होश में न ला सके।

तब इन दोनों महारथियों के बीच केवल दैवी शक्तियों के उपयुक्त ऐन्द्रजालिक आयुधों द्वारा एक भयानक द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। मनसा ने देव-चिकित्सक पर विष से भरे प्रक्षेपणास्त्रों द्वारा आक्रमण किया। धन्वन्तरि ने मनसा द्वारा फैंके गए सम्मोहक आग्नेय कमल को अपनी साँस द्वारा जलाकर राख कर दिया। मनसा द्वारा फेंके गये जादू शक्ति से भरे सरसों के बीजों को उन्होंने एक मुट्ठी धूल से नष्ट कर दिया। मनसा के घात्विक जादुई भाले के उन्होंने विष्णु से प्राप्त एक भाले द्वारा दो टुकड़े कर डाले। एक हजार जादू-पाश को विफल करने के लिये देव-चिकित्सक ने अपनी मानसिक एकाग्रता से गरुड़ का आवाहन किया, जिसने शीघ्रता से प्रकट होकर अपने प्रिय शिकार को एकदम निगल लिया। फिर मनसा ने शिव से प्राप्त राख से भरी एक करछुल फेंकी किन्तु गरुड़ ने अपनी पीठ द्वारा धन्वन्तरि को इससे बचा लिया और अपने पंखों की फड़फड़ाहट से राख को बिखेर दिया। अंत में क्रोधित होकर मनसा ने अपने सर्वाधिक शक्तिशाली अस्त्र को उठा लिया। आग उगलता हुआ यह भाला देवी मनसा को शिव से प्राप्त हुआ था। यह सैंकड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान चमक रहा था तथा सृष्टि के प्रलयकाल के समय होने वाले अग्निदाह के समान धधक रहा था। यह देखकर भगवान् ब्रह्मा और शिव शीघ्रता से युद्धस्थल की ओर इस भय से दौड़े कि कहीं धन्वन्तरि का विनाश ही न हो जाये। उन्होंने धन्वन्तरि को उपहार, प्रार्थना एवं मनन द्वारा भयावह देवी मनसा को शान्त करने का परामर्श किया। उन्होंने ऐसा ही किया। देवी के सम्मुख वे नतमस्तक हो गये। उनकी अप्रतिरोध्य शक्ति को स्वीकार किया और इस प्रकार विनाश की इस भयावह शक्ति को प्रसन्न कर लिया।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धन्वन्तरि के नाम का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। वह शास्त्रीय भारतीय चिकित्सा शास्त्र के देवता थे और अभी भी उनका नाम पर्याप्त सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। आज भी यदि आयुर्वेद का कोई चिकित्सक इस क्षेत्र में उच्चतम एवं पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसे कभी-कभी धन्वन्तरि की उपाधि से सुशोभित किया जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आयुर्वैदिक चिकित्साशास्त्र के आद्यगुरु :

भारद्वाज

चरक संहिता की एक पौराणिक गाथा में यह वर्णन है कि ऋषि भारद्वाज ने इन्द्रदेव से किस प्रकार आयुर्वेदिक चिकित्साज्ञान प्राप्त किया और तत्पश्चात् उस ज्ञान को अन्य ऋषियों में प्रतिपादित किया। गाथा इस प्रकार है: रोगों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा रोग अति कष्ट-दायक होने लगे। अध्ययन-मनन, व्रत-उपवास तथा धार्मिक कार्यकलापों में उन रोगों के कारण बाधा पड़ने लगी। मनुष्य-जाति की इस दुर्दशा से चिन्तित होकर कल्याणकारी महान् ऋषियों ने हिमालय की पवित्र घाटियों में एक सभा की। यह ऋषि ब्रह्मज्ञान तथा नियंत्रण और अनुशासन के यथार्थ भंडार से युक्त तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। इन्होंने वहाँ बैठकर यह समस्या प्रस्तुत की कि रोग जनता के स्वास्थ्य को नष्ट और समाप्त कर रहे हैं और इस प्रकार से जीवन में सुख प्राप्ति तथा आत्मा की मुक्ति के उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा बन रहे हैं। इन रोगों को रोकने के लिये क्या उपचार किये जाएँ, यह प्रश्न भी उन्होंने उठाया। यह कहकर वह ध्यानमग्न हो गये। तब उन्हें अपने ज्ञानचक्षु से यह दिखाई दिया कि इस ब्रह्मांड के स्रष्टा महाप्रभु ब्रह्मा ने आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र का ज्ञान प्रजनक दक्ष-प्रजापति पर प्रकट किया, उन्होंने इस ज्ञान की शिक्षा अश्व मियुन को दी, तत्पश्चात् देवों के देव इन्द्र ने यह ज्ञान अश्वनि कुमारों से प्राप्त किया। अत: रोगों से त्राण पाने के लिए सुरपति इन्द्र की शरण में चलना चाहिये। अब प्रश्न यह था कि रोगों तथा उन्हें विजित करने के साधनों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सहस्राक्ष इन्द्र के पास कौन जाये ?

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ऋषि भारद्वाज ने इस कार्य के लिए स्वयं ही अपना नाम प्रस्तुत किया तथा अन्य सभी ऋषियों ने अपनी सहमति दे दी।

भारद्वाज इन्द्र के पास पहुंचे

भारद्वाज इन्द्र के निवास स्थान पर गये। इन्द्र दिव्य ऋषियों के बीच विराजमान थे तथा अग्नि की भाँति चमक रहे थे। देवताओं के राजा के समक्ष पहुँचकर उन्होंने प्रणाम किया, उनकी विजय की मंगलकामना की। तत्पश्चात् विनयपूर्वक उन्हें ऋषियों का संदेश दिया तथा सुरपति से उचित उपायों की शिक्षा देने का अनुरोध किया। इन्द्र को भारद्वाज की बुद्धिमत्ता का ज्ञान था, उन्होंने ऋषि को आयुर्वेद के विज्ञान को थोड़े से शब्दों में बता दिया। भारद्वाज ने एकनिष्ठ भक्ति द्वारा इस शास्त्र का पूर्ण एवं शुद्ध ज्ञान अर्जित किया। फिर, उन्होंने इस विज्ञान की दीक्षा अन्य ऋषियों को ज्यों-की-त्यों दी, न अपनी ओर से कुछ जोड़ा तथा न ही कुछ छिपाया। भारद्वाज ने ऋषियों को रोगों के कारणों और लक्षणों, पदार्थों के सामान्य एवं विशिष्ट स्वभाव, उनके गुण एवं उनकी क्रियाओं के बारे में शिक्षा दी। उन महान् ऋषियों ने अपने विवेक से इस ज्ञान को समझ लिया और इस प्रकार स्वयं को तथा समस्त मानव जाति को लाभान्वित किया।

चरक संहिता तथा अन्य स्रोतों के अनुसार भारद्वाज सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्हें आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ था और उन्होंने ही सर्वप्रथम इसकी शिक्षा दी। चरक संहिता में भारद्वाज के शिष्य आत्रेय की शिक्षाओं को मूर्तरूप दिया है गया है तथा मूलतः इसकी रचना ई० पू० 800 के आस-पास हुई समझी जाती है। इस पुस्तक से भारद्वाज के जीवन-काल का कुछ ज्ञान भी प्राप्त होता है। उन्हें ऋषि अथर्वांगिरस का वंशज बताया जाता है और कोई आश्चर्य नहीं है कि अथर्ववेद में उनके नाम और ख्याति का अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन है।

भारद्वाज का जन्म

भारद्वाज के जन्म तथा उनके पितृत्व से सम्बंधित एक पौराणिक गाथा का उल्लेख विष्णु पुराण और महाभारत में मिलता है। बृहस्पति के संसर्ग

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से ममाता ने उन्हें जन्म दिया था । उत्थय की पत्नी ममाता जब गर्भवती थी, तब उसके पति के छोटे भाई बृहस्पति ने उसके साथ सहवास किया। पहले भ्रूण ने, जो बाद में दीर्घात्मा नामक ऋषि हुए, इस पर आपत्ति की तथा नये भ्रूण को अपने पैरों से धकेल बाहर किया। क्रोध में बृहस्पति ने प्रथम भ्रूण को अन्धा कर दिया । बाद वाले गर्भ का भ्रूण यद्यपि बाहर फेंका जा चुका था किन्तु वह जीवित रहा । बाद में राजा पौरव ने उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया क्योंकि राजा पौरव अपनी पत्नी द्वारा जन्में बच्चों से सन्तुष्ट नहीं थे और इसीलिए उन्हें प्रतिभासम्पन्न भारद्वाज को गोद लेने की सलाह दी गई थी ।

यह कहा जाता है कि इस अर्द्धपौराणिक तथा अर्द्धऐतिहासिक व्यक्ति भारद्वाज ने मनुष्य की तीन पीढ़ियों के बराबर लम्बी आयु प्राप्त की। यद्यपि भारद्वाज से सम्बन्धित इन कहानियों में परम्परा और पौराणिकता का पर्याप्त समावेश है, फिर भी यह गाथाएँ निस्सदेह ही भारत के प्राचीन काल में आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के एक महान और विद्वान गुरु तथा इस पद्धति के व्यवसायी के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं।

आज भी दवाओं के कुछ ऐसे नुस्खे प्रयोग में लाये जाते हैं, जो उन्हीं के नाम से प्रचलित हैं । चिकित्सा शास्त्र के कुछ ग्रन्थों में उनका उल्लेख मिलता है अथवा उनका श्रेय उन्हीं को दिया जाता है ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के विख्यात अध्यापक :

आत्रेय

सभी प्राचीन सभ्यताओं के रोग हरने की कला के जन्म का श्रेय किसी न किसी देवता अथवा पौराणिक व्यक्ति को दिया गया है। जिस प्रकार थॉथ ने रोगहर कला मिश्रवासियों पर, एपॉलो ने यूनानियों पर प्रकट की, ठीक उसी प्रकार भारतवासियों को यह ज्ञान सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से प्राप्त हुआ। प्रजनक 'दक्ष प्रजापति' ने 'जीवन के विज्ञान' को संपूर्ण रूप में भगवान ब्रह्मा से प्राप्त किया। दक्ष प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और अश्विनी कुमारों से देवराज इन्द्र ने प्राप्त किया। पूर्व पृष्ठों में वर्णन किया जा चुका है कि ऋषियों के निवेदन पर भारद्वाज इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए इन्द्र के पास गये ताकि पीड़ा पहुँचाने वाले विभिन्न रोगों से मानव जाति की रक्षा की जा सके। उपर्युक्त पौराणिक गाथा के अनुसार, इस ज्ञान को प्राप्त करने वाले सर्वप्रथम प्राणी भारद्वाज ने यह विद्या अन्य ऋषियों को सिखाई। इन ऋषियों में एक थे—पुनर्वसु, जिन्हें सामान्यतया आत्रेय के नाम से जाना जाता है।

अत्रि के पुत्र आत्रेय का काल ई० पू० आठवीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। आत्रेय एक महान चिकित्सक तथा अध्यापक थे। उन्होंने कई कृतियों की रचना की है, इनमें आत्रेय संहिता प्रसिद्ध और सर्वविदित है। उनके शिष्यों अग्निवेश, मेल, जतुकर्ण, पारशर, कसरा-पाणि तथा हरित ने भी उनकी शिक्षाओं पर आधारित ग्रन्थों का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संकलन किया है।

अग्निवेश के महान विश्व कोश का बाद में सम्पादन किया गया और अब यह चरक संहिता के नाम से जाना जाता है। इस में आत्रेय की शिक्षाओं का समावेश है।

आत्रेय संहिता

इसमें 46500 श्लोक हैं। इसके प्रारंभिक अध्याय में आत्रेय और उनके शिष्यों के बीच हिमालय पर्वत के उत्तरी छोर पर हुई एक भेंट का वर्णन किया गया है। आत्रेय ने उन्हें समझाया कि 'संपूर्ण आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र का पूर्ण ज्ञान मनुष्य अपने पूरे जीवन काल में भी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः तुम्हें मेरे एक अन्य छोटे ग्रन्थ से विद्या प्राप्त करके ही संतुष्ट हो जाना चाहिए।'

आत्रेय ने रोगों को कई वर्गों में बांटा है—साध्य रोग (जिनका इलाज हो सकता है), असाध्य रोग, तंत्र मंत्र द्वारा साध्य रोग तथा वे रोग जिनके उपचार की संभावना बहुत ही कम होती है। उन्होंने रोगियों में भी अन्तर माना है—ऐसे रोगी जिनका उपचार चिकित्सक को अवश्य करना चाहिए तथा वे रोगी जिनका उपचार करने को मना कर देना चाहिये। उन्होंने आयु तथा मनोदशा (मिजाज) पर वायु, मिट्टी तथा मौसम के प्रभाव का वर्णन किया है। उन्होंने छः प्रकार के स्वाद बताये हैं—मीठा, संकोचक (कब्जियत करने वाला), कड़वा, खट्टा, नमकीन तथा तीखा। उन्होंने यह चर्चा भी की है कि प्रत्येक स्वाद का मानव शरीर पर क्या प्रभाव होता है। उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के जल के चिकित्सीय गुण तथा विभिन्न रोगों में गर्म तथा ठंडे जल के उपयोग, विभिन्न स्रोतों से प्राप्य दूध, गन्ना, खट्टा दलिया, चावल के निषेक, जौ तथा अन्य अनाज, तेल, फल, जड़ी-बूटी, शीरे से बने मादक पेय, शहद आदि के भौतिक तथा चिकित्सकीय गुणों का वर्णन किया है। उन्होंने नाना प्रकार के पशु-पक्षी, मछली तथा सर्पों का विवरण भी दिया है। उनके मांस के गुणों का विवेचन किया है तथा आहार के विषय और सिद्धांत भी बताये हैं। उन्होंने स्वप्न, शुभ एवं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अशुभ लक्षणों तथा वर्जनाओं के बारे में भी लिखा है। तत्पश्चात उन्होंने रोगों के नैतिक कारणों का विवेचन किया है तथा विभिन्न रोगों, यथा ज्वर, अतिसार, पेचिश, क्षय, रक्तस्राव आदि का तथा उनके उपचार का विशद विवरण दिया है। अन्त में उन्होंने विषों की विभिन्न प्रतिकारक (मारक) वस्तुओं का भी उल्लेख किया है।

गोष्ठियाँ

चरक संहिता में आत्रेय की शिक्षाओं का समावेश है। उसके प्रत्येक अध्याय का आरभ इन शब्दों से होता है: "पूजनीय आत्रेय ने ऐसा कहा ...।" इस ग्रन्थ में चिकित्सा शास्त्र के विभिन्न विषयों पर शिष्यों के साथ हुए आत्रेय के विचार-विमर्श का विवरण मिलता है। इन विषयों में वात का हितकर एवं अहितकर प्रभाव मानव और रोगों की उत्पत्ति स्वाद और उसके प्रकार, भ्रूण अंगों का विकास, वमनकारी काष्ठ-फल तथा आनीमा की मात्रा आदि भी सम्मिलित है। इस अति रोचक एवं ज्ञानप्रद विचार-विमर्श हेतु गोष्ठियों में आत्रेय जिस विषय पर चर्चा करना चाहते, उसकी पहले ही घोषणा कर देते थे। उनके शिष्य तथा उनके पास इकट्ठे हुए ऋषि एवं विद्वज्जनों को भी अपने व्यक्तिगत विचार प्रकट करने के लिए निमंत्रित किया जाता था। शिष्य कुछ प्रश्न भी पूछते थे तथा गुरु आत्रेय उनका उत्तर देते थे। चर्चा में भाग लेने वाले विद्वानों के विचार सुनने के पश्चात आत्रेय अपनी सम्मति प्रस्तुत करते थे, कभी-कभी दलील तथा उदाहरण देकर उसकी व्याख्या भी करते थे, । सभा अनिवार्यतः उस सम्मत्ति को स्वीकार कर लेती थी। इस विचार-विमर्श में सोचने और स्वीकारने की इच्छा दिखाई देती है चर्चा में किसी भी व्यक्ति द्वारा अपने मत पर दृढ़ रहने की इच्छा नहीं मिलती। इन सभी विचार-विमर्शों में आत्रेय अत्यधिक गरिमा, आत्म-संयम एवं समझदारीपूर्वक आचरण करते थे।

यह कहना उचित ही है कि आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र में तर्क पूर्ण भावना का सूत्रपात आत्रेय ने ही किया। यद्यपि शरीर और सृष्टि की नियंत्रक शक्तियों की धारणा वैदिक साहित्य में समाहित है, फिर भी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यह श्रेय आत्रेय को ही जाता है कि आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र में त्रिदोष की धारणा की पूर्ण व्याख्या की गई। चरक संहिता में एक सिरे से दूसरे सिरे तक मिलने वाले मूलाधार रोग उत्पन्न करने वाले विभिन्न कारकों से सम्बन्धित मूल धारणा एवं औषधियों की क्रिया का वर्णन आत्रेय का ही है।

अध्यापक

आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के अध्यापक के रूप में आत्रेय अद्वितीय थे। अपने शिष्यों को शिक्षा देने के लिए प्रयुक्त की गई रीतियाँ, विषयों को क्रमबद्ध करना और उनका वर्गीकरण तथा आत्रेय द्वारा प्रतिपादित चिकित्साशास्त्र की धारणाएँ इसका प्रमाण हैं। आयुर्वेद के अन्य सभी समकालीन ग्रन्थ जैसे कश्यप हरित, मेल द्वारा रचित पुस्तकें आत्रेय को गुरु तथा आयुर्वेद का अधिकारी स्वीकार करते हैं। जिस समय आत्रेय ऋषियों, विद्वानों और यदा-कदा निकट राज्यों के विद्वान शासकों के, मध्य बैठे होते थे, उस समय उनके प्रति उनके शिष्यों द्वारा प्रदर्शित श्रद्धा की भावना उनके विचारों की श्रेष्ठता तथा उत्तरी हिमालय से पूर्वी भाग कैलाश पर्वत तक तथा दक्षणी मैदानों तक में इस प्रकार की सभाओं का आयोजन निस्संदेह ही उनकी लोकप्रियता, बुद्धिमत्ता तथा समकालीनों के मध्य उनके सर्वोच्च स्थान की ओर इंगित करती है।

आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र की व्याख्या में आत्रेय का उतना ही विशेष एवं महत्वपूर्ण स्थान है जितना यूनानी चिकित्साशास्त्र में हिपोक्रीत्स का। वस्तुतः इन दोनों की क्षमता, योग्यता एवं उपलब्धियों में ही समानता नहीं पाई जाती, अपितु उनके विचारों में भी समानता है। तत्कालीन धारणा के विपरीत आत्रेय पागलपन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पागलपन से देवता अथवा राक्षसों का नाम मात्र का भी सम्बन्ध नहीं है, अपितु पागलपन अनुचित आचरण के कारण उत्पन्न होता है तथा यथोचित उपचारों से इसका प्रतिकार किया जा सकता है। यूनान के हिपोक्रीत्स ने भी ठीक यही बात मिरगी के बारे में कही है, जिसे उस समय तक एक धार्मिक रोग कहा जाता था। हिपोक्रीत्स कहते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं, "यह रोग मुझे तो किसी अन्य रोग से अधिक दैवी अथवा धार्मिक नहीं लगता। मिरगी भी अन्य रोगों की भाँति प्राकृतिक कारणों द्वारा ही उत्पन्न रोग है।"

किन्तु आत्रेय हिपोक्रीत्स अथवा यूनान के प्रारंभिक दार्शनिक चिकित्साशास्त्रियों से भी बहुत पहले हुए हैं और वह भी पूर्व में।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महात्मा बुद्ध के चिकित्सक :

जीवक

ई० पू० छठी और पाँचवी शताब्दी में भारत में एक विख्यात चिकित्सक जीवक हुए थे। उनके वारे में अधिकांश जानकारी बौद्धग्रन्थों से मिलती है इन ग्रन्थों में जीवक द्वारा किए गए सैकड़ों रोगियों के चमत्कारी उपचारों का उल्लेख मिलता है। उनके रोगियो में भगवान बुद्ध, सम्राट् और जन-साधारण सभी थे। भारत में सर्वत्र उनकी माँग रहती थी तथा उनके परामर्श से लाभान्वित होने के लिए दूर-दूर से रोगी उनके पास आया करते थे। धनी रोगियों से वह अत्यधिक शुल्क लेते थे।

जन्म तथा शिक्षा

जीवक राजगृह की एक गणिका शलवती के पुत्र थे। राजगृह (आधुनिक पटना के निकट) बिम्बसार के राज्यकाल में मगध साम्राज्य की राजधानी थी। जन्म के पश्चात जीवक को मिट्टी के एक ढेर पर फेंक दिया गया था। लोगों ने जिस समय उस बच्चे को वहाँ देखा, वह उस समय भी जीवित था। इस मामले की सूचना बिम्बसार के पुत्र राजकुमार अभय को दी गई। राजकुमार ने उसका नाम जीवक रख दिया तथा अपनी देख-रेख में उसका पालन-पोषण कराया। यही कारण है कि जीवक को जीवक कुमार भक्का भी कहते हैं, जिसका अर्थ है राजकुमार द्वारा पालित और पोषित।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बड़ा होने पर जब उसे अपने पूर्ववृत्त की जानकारी मिलती तो वह राजकुमार को सूचित किये विना ही उस समय के भारत में प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र तक्षशिला चला गया। तक्षशिला रावलपिंडी, जो अब पाकिस्तान में है, के निकट स्थित थी। वहाँ उसने एक 'जगत विख्यात चिकित्सक' के संरक्षण में सात वर्ष तक चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन किया। इस अवधि की समाप्ति पर जीवक की एक प्रकार की प्रयोगात्मक परीक्षा ली गई। उनके गुरु ने उनसे कहा कि एक फावड़ा ले लो तथा तक्षशिला के चारों ओर एक योजन (लगभग तीन मील) जाओ, तथा खोज कर कोई ऐसा पौधा ले आओ जिसमें कोई भी चिकित्सीय गुण न हो। काफी खोजबीन के पश्चात भी जीवक को ऐसा कोई पौधा न मिला और उसने यह सूचना अपने गुरु को दे दी। उसके गुरु उससे सन्तुष्ट हुए तथा उसे चिकित्साशास्त्र के व्यवसाय की अनुज्ञा प्रदान कर दी। जीवक को उन्होंने कुछ धन भी दिया ताकि वह अपने गृह निवास तक लौटने का मार्गव्यय उठा सके। इस धन से जीवक साकेत (उत्तर-प्रदेश में फैजाबाद ज़िले के निकट) तक पहुँच पाया और वहीं उसे अपनी जीविका के लिए धनोपार्जन करने के लिए लाचार होना पड़ा।

उसके रोगी

साकेत में जीवक का पहला रोगी था—एक व्यापारी की पत्नि, जो गत सात वर्ष से सिर के एक पुराने रोग से पीड़ित चली आ रही थी। कई 'जग प्रसिद्ध' चिकित्सक उसकी जाँच कर चुके थे किन्तु उसका उपचार करने में असफल रहे थे तथा वे शुल्क स्वरूप स्वर्ण की काफी अधिक मात्रा लेकर अपना रास्ता ले चुके थे। जीवक की आयु कम थी और देखने में वह अनुभवी नहीं लगते थे, अतः उन्हें इस रोगी को देखने की अनुमति कठिनाई से मिल पाई। जीवक ने एक मुट्ठी शुद्ध घी लिया, उसमें कुछ औषधियाँ मिलाईं। इस मिश्रण को उबाला तथा विस्तर पर पीठ के बल लेटी हुई रोगिणी की नाक के द्वारा उसे पिला दिया। नाक में डाला गया घी मुँह में निकल आया और इसे रोगिणी ने थूक दिया। तुरन्त ही वह रोगिणी स्वस्थ और चंगी हो गई।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इसके लिए जीवक को सोलह हजार कहपण, एक नौकर तथा दस घोड़ों की एक बग्घी मिली। जब जीवक राजगृह पहुँचा, उसने अपना यह अर्जित धन अपने संरक्षक राजकुमार अभय को भेंट कर दिया। कुमार उससे प्रसन्न हुए तथा अपने निजी महल में जीवक के रहने की व्यवस्था करा दी।

उस समय बिम्बसार भगन्दर रोग से पीड़ित थे। जब उसकी रानियों ने उसके वस्त्रों पर रक्त के धब्बे देखे तो उन्होंने यह कहकर राजा का मज़ाक उड़ाया कि महामहिम को रजस्राव हो रहा है और वह उचित समय पर बच्चे को जन्म देंगे। सम्राट् इससे चिढ़ गये और उपचार के लिए छटपटाने लगे। जीवक से परामर्श लिया गया। जीवक ने अपनी अंगुली द्वारा किसी औषधि को भगन्दर पर एक ही बार लगा कर राजा का इलाज कर दिया। सम्राट् ने जीवक को अपनी पाँच सौ पत्नियों के समस्त आभूषण पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये तथा उन्हें राज सी चिकित्सक तथा बुद्ध और उनके भिक्षुओं का चिकित्सक नियुक्त कर दिया।

मध्य भारत में स्थित अवन्ति राज्य के सम्राट् चंड प्रद्योत को पीलिया रोग हो गया। बिम्बसार ने जीवक को उनके उपचार के लिए वहाँ भेज दिया। घी इस रोग की एक मात्र औषधि थी किन्तु अवन्ति सम्राट् घी से चिढ़ते थे। जीवक ने इस औषधि को तैयार किया, राजा को यह औषधि देने के बारे में निदेश दे दिये किन्तु जीवक, राजा को औषधि का स्वभाव पता चलने से पूर्व ही, राजा के हाथी पर सवार हो भाग निकले। प्रद्योत ने क्रोध में आकर उन्हें पकड़ने का आदेश दिया और उनके पीछे अपने एक दास को दौड़ा दिया। जब जीवक कौशाम्बी में अपना अल्पाहार कर रहे थे, वह दास उनके पास जा पहुँचा। जिस हर्र को जीवक स्वयं खा रहे थे, उसी का आधा भाग जीवक ने उस दास को भी दिया। दास ने बिना किसी सन्देह के उसे लेकर खा लिया। तुरन्त ही दास को दस्त लग गये और उसने जीवक से जान बचाने की प्रार्थना की। इसके पश्चात जीवक ने उसे अवन्ति के राज प्रासाद से भागने का कारण बतलाया तथा उसका इस शर्त पर इलाज करने का वायदा किया कि दास उसे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जाने से नहीं रोकेगा। दोनों व्यक्ति ही प्रस्ताव पर सहमत थे, अतः जीवक उसका उपचार करने के पश्चात राजगृह की ओर आगे चले गये। इसी बीच प्रद्योत रोगमुक्त हो गये और उन्होंने अपने अनुग्रह के प्रतीक रूप में जीवक को सिवेप्याक के परिधान भेजे, जो जीवक ने बुद्ध को भेंट कर दिये।

शल्य-क्रिया

यह भी कहा जाता है कि जीवक शल्य-क्रिया का भी उपयोग करते थे। राजगृह में एक व्यापारी सिर के एक अति कष्टकर रोग से पीड़ित था और अग्रणी चिकित्सक उससे यह कह चुके थे कि पाँचवें या सातवें दिन उसकी मृत्यु हो जाएगी। वह राजा बिम्वसार के पास आया तथा उनसे निवेदन किया कि वह जीवक को उसका इलाज करने की अनुमति दे दें। अनुमति मिल जाने पर जीवक ने उसकी परीक्षा की और उसे यह बताया कि उसके सिर की शल्यक्रिया होने के पश्चात उसे सात-सात महीने क्रमशः वायीं व दायीं करवट तथा पीठ के बल अर्थात् कुल इक्कीस महीने लेटे रहना होगा। रोगी सहमत हो गया। जीवक ने उसके सिर की शल्यक्रिया की, त्वचा को हटाकर उसने दो कीड़े बाहर खींच लिये जो कुछ पहले उसके सिर में घुस गये थे। शल्यक्रिया के पश्चात रोगी उक्त तीनों अवस्थाओं में सात-सात दिन ही लेटा। इसके बाद उसने और अधिक लेटे रहने में अपनी असमर्थता प्रकट की। जीवक ने तब उस रोगी से कहा कि इतना आराम ही पर्याप्त था। जीवक ने उसे यह समझाया कि प्रारम्भ में उसने आराम के लिये लम्बा समय इस लिये बताया था जिससे वह आराम के लिये वांछित इक्कीस दिन के समय को धैर्य से काट सके। इलाज के पश्चात उस रोगी ने अपनी सम्पूर्ण सम्पदा भेंट में देने तथा जीवक का दास बनने का प्रस्ताव किया। किन्तु जीवक ने केवल एक लाख कहपण राजा के लिये तथा इतनी ही राशि स्वयं के लिए स्वीकार की।

यह कहा जाता है कि जीवक ने एक युवा पुरुष रोगी के उदर की शल्यक्रिया भी की। व्यायाम के करतबों के कारण इस व्यक्ति की आंतें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आपस में लिपट गई थीं। रोगी को कुछ भी नहीं पचता था तथा उसकी अन्तड़ियाँ भी अनियमित हो गई थीं। रोगी कमजोर तथा विकृत हो गया था, उसका रंग पीला पड़ गया था तथा उसकी शिरायें उसकी त्वचा में से स्पष्ट दिखने लगी थीं। जीवक ने सावधानीपूर्वक उसकी परीक्षा की, फिर अन्य व्यक्तियों से कमरे के बाहर चले जाने को कहा, पर्दा खींचा, रोगी को एक खम्बे के साथ बाँध दिया और फिर उसके पेट की त्वचा को बीच से काटा, लिपटी हुई आंतों को बाहर खींच कर उचित रूप से उन्हें अलग कर दिया। इसके पश्चात् उन्हें सही स्थिति में वापिस रखकर त्वचा को सी दिया और घाव पर एक मरहम लगा दिया ताकि घाव शीघ्र ही भर जाये। इस शल्यक्रिया के लिये जीवक को सोलह हज़ार कहपण दिये गये।

बुद्ध का उपचार

जीवक बुद्ध के प्रति अति आसक्त थे। एक बार बुद्ध शरीर की रासायनिक व्यवस्था में गड़बड़ के कारण बीमार पड़ गये। जीवक ने कुछ दिन तक बुद्ध के शरीर पर चर्बी की मालिश का सुझाव किया। उसके पश्चात जीवक ने उन्हें सूँघने के लिये मुट्ठी भर कंवल दिये जो एक हल्के विरेचक का काम कर सके। जब विरेचक की क्रिया हुई, उस समय जीवक कहीं दूर चले गये। जीवक को वहाँ यह ध्यान आया कि वह बुद्ध से गुनगुने जल से स्नान करने की बात कहना भूल गये थे। भगवान बुद्ध को जीवक के विचार का अन्तर्ज्ञान हो गया और उन्होंने वांछित स्नान लिया।

इसी प्रकार की एक और घटना का भी उल्लेख मिलता है। देवदत्त द्वारा फेंकी गई चट्टान की एक किरच से बुद्ध के पाँव में इतनी चोट लग गई कि उन्हें मद्दाकुछी से जीवक के आम्रवन तक उठाकर ले जाना पड़ा। वहाँ जीवक ने कोई स्तम्भक औषधि लगाकर घाव पर पट्टी कर दी। फिर वह नगर से कहीं बाहर चले गये। उन्हें आशा थी कि वह पट्टी को खोलने के समय तक लौट आयेंगे। किन्तु जिस समय वह लौटे नगर के द्वार वन्द हो चुके थे, अतः वह नगर में प्रवेश नहीं कर पाये।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उन्हें इस बात की बहुत चिन्ता थी कि यदि वह पट्टी वुद्ध के पाँव में सारी रात बंधी रही, तो बुद्ध को अत्यधिक पीड़ा होगी। किन्तु भगवान बुद्ध ने अन्तर्ज्ञान द्वारा उनके विचारों को जान लिया और पट्टी को हटा दिया।

चिकित्सक के रूप में जीवक की ख्याति हो जाने के कारण उनके पास उनकी क्षमता से अधिक कार्य रहता था किन्तु उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं के प्रति अपने कर्त्तव्य मे कभी भी असावधानी नहीं बरती। बहुत-से ऐसे रोगी व्यक्ति, जो अपने उपचार का व्यय उठाने में असमर्थ थे, बुद्ध के अनुयायिओं में सम्मिलित हो जाते थे उन्हें भी निशुल्क उपचार की सुविधा प्राप्त हो जाती थी। बुद्ध ने जीवक को अपने जन साधारण अनु-यायिओं में सबसे प्रमुख होने की घोषणा की। बुद्ध ने जीवक का नाम उन भले व्यक्तियों की सूची में भी सम्मिलित किया जिन्हें अमरत्वप्र ाप्त होने का आश्वासन दिया था। जीवक के निवेदन पर बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को व्यायाम करने का आदेश दिया ताकि उनके चेहरे पर आया हुआ पीलापन दूर हो जाये। जीवक बुद्ध से दिन में दो बार भेंट करने के लिए सदा ही उत्सुक रहता था। दूरी अधिक होने के कारण, जीवन ने राज-गृह में अपने निजि आम्रकुंज के भीतर ही सभी अनुलग्न वस्तुओं के साथ एक विहार का निर्माण कराया तथा इसे भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षुओं को भेंट कर दिया।

बिम्बसार की मृत्यु के पश्चात जीवक अजातशत्रु की सेवा में बने रहे। जीवक ने ही अजातशत्रु को उसके पितृ-हत्या के अपराध के पश्चात बुद्ध का अनुयायी बनाया था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

योग विद्या के प्रणेता :
पातंजलि

योग सूत्रों के व्याख्याता पातंजलि की जानकारी हमें विभिन्न पौराणिक आख्यानों द्वारा उपलब्ध होती है। इनमें से कुछ आख्यानों में पाणिनि की संस्कृत व्याकरण पर महाभाष्य के रचनाकार के साथ उनका तादात्म्य स्थापित किया गया है किन्तु कुछ अन्य आख्यानों में एक ही नाम के इन दोनों व्यक्तियों को अलग-अलग बताया गया है। पौराणिक रूप में पांतजलि को ब्रह्मांड को अपने फन पर टिकाने वाले सर्पराज (शेषनाग) का अवतार समझा जाता है। सम्भवतया उनका जीवन काल ई० पू० दूसरी शताब्दी है और इसी काल में उन्होंने योग सूत्रों की रचना की। किन्तु योग के मूल विचार और क्रियाविधि कतिपय प्रारम्भिक उपनिषदों में भी मिलती है तथा अथर्ववेद तक में भी इनका मूल खोजा जा सकता है।

योग का उद्देश्य

योग सूत्रों के प्रारम्भ में बताया गया है कि योग का उद्देश्य उस मस्तिष्क की स्वतः परिवर्तित क्रियाओं का निश्चयपूर्वक रोकना है, जो स्वभावतः समीर द्वारा तालाब के तल की शांति भंग किये जाने के समान ही निरन्तर उत्तेजित रहता है। इसे पूर्णतः स्थिर बनाने के लिये यह आवश्यक है कि बाहर की ओर से आने वाले सभी संवेदी प्रभाव तथा अन्दर से उठने वाले सभी उद्दीपनों को पूरी तरह रोक लिया जाये। जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है तो किसी शान्त तालाब की तली में पड़े

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मोती की भांति परमात्मा के साक्षात दर्शन हो जाते हैं।

योग की अवस्थाएँ

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये योग सिद्धांत ने विशेष भौतिक तथा मानसिक साधना बताई है। यह साधना क्रमशः आठ अवस्थाओं में की जा सकती है। पहली दो अवस्था—याम् अर्थात् आत्मनियंत्रण तथा नियाम् अर्थात् आचरण नियमों का पालन हैं। इनका उद्देश्य अहंकारी आवेशों को जीतना तथा सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य लेना है। निरन्तर अभ्यास द्वारा इन अवस्थाओं को प्राप्त करने के पश्चात अगली तीन अवस्थाओं अर्थात् आसन लगाना (सही और लगातार बैठे रहने का ढंग), प्राणायाम करना (साँस का नियंत्रण) तथा प्रत्याहार (अनुभूतियों का निवर्तन) द्वारा मस्तिष्क पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है। विभिन्न आसनों का अनिवार्य उद्देश्य मेरु दंड को विल्कुल सीधा रखना है। श्वास क्रिया तथा उत्तेजन अथवा शान्ति जैसी विभिन्न वैचारिक प्रक्रिया परस्पर सम्बन्धित हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाल लिया गया कि श्वास को नियंत्रित करके वैचारिक प्रक्रियाओं को भी नियंत्रित किया जा सकता है। विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों यथा स्पर्श, स्वाद, गंध, श्रवण एवं दृष्टि द्वारा भीतर अथवा बाहर से उठने वाले अन्यमनस्कता के प्रत्याहार उस कछुए के सदृश हैं जो बाहरी संसार से अपनी सुरक्षा करने हेतु अपने अंगों को कवच के नीचे सिकोड़ लेता है।

इस उपलब्धि के पश्चात अगली दो अवस्थाएँ—धारण (मस्तिष्क को स्थिर करना) तथा ध्यान धीरे धीरे मौजी-मस्तिष्क पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता देती हैं। ध्यान के लिए चुनी गई वस्तु में विशेष निश्चयात्मक सगुण होने अच्छे होते हैं। ऐसी वस्तु कोई प्रतिमा अथवा कोई भाव भी हो सकता है। इस अवस्था के दौरान, योगी के लिए वाह्य संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ उसका अनुभव नहीं करतीं। अगली और अन्तिम अवस्था समाधि में मस्तिष्क ध्यान लगाई गई वस्तु में लीन हो जाता है तथा समय और स्थान को विजित कर लिया जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इस प्रक्रिया में विभिन्न अवस्थाओं का नियमन एवं समायोजन शिष्य की क्षमता के अनुसार गुरु द्वारा किया जाता है। अन्तिम अवस्था अत्याल्प व्यक्तियों को ही प्राप्त होती है।

योग सिद्धान्त

हठयोग के सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ ऐसी महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बातें हैं जिनका उल्लेख करना वांछित है। उपजंघी प्रदेश में स्थिर मूलाधार से ऊपर की ओर नासिका तक मेरुदंड के बायें और दायें भाग के सहारे दो प्रणालियाँ जाती हैं। बांयी प्रणाली को पिंगला अथवा सूर्य नदी कहते हैं। तथा दायीं प्रणाली को इड़ा अथवा चन्द्र नदी कहते हैं। मेरुदंड पर छः चक्रों की एक श्रृंखला स्थित होती है। इनके स्थान नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार हैं—संक्रमी प्रदेश में (मूलाधार) , कटि प्रदेश के थोड़ा ऊपर (स्वाधिस्थान), नाभि के ठीक पीछे (मणिपुर),हृदय के निकट (स्नाहत), कंठ में (विशुद्ध) तथा भौंहों के मिलन स्थल के पीछे (आजन)। एक अतिसूक्ष्म प्रणाली सुषुम्ना, मेरुदंड के केन्द्र से कपाल में एक छिद्र द्वारा सिर तक जाती है।

प्राणायाम की स्थिति में श्वास की स्वैच्छिक क्रिया निरन्तर विरल होती जाती है और प्राण स्वयं को मुख से पीछे की ओर शरीर के भीतर को खींच लेता है तथा इड़ा और पिंगला नामक दो प्रणालियों में संचित हो जाता है। इन प्रणालियों के मूलाधार में इसकी उपस्थिति के कारण उत्पन्न दाब द्वारा प्राण वहाँ स्थित विचाराधीन तथा कुण्डलीकृत शक्ति को जागृत कर देता है। तत्पश्चात योग की क्रमिक अवस्थाओं में यह शक्ति मेरुदंड के सहारे केन्द्रीय सूक्ष्म प्रणाली सुषुम्ना तथा विभिन्न केन्द्रों से होकर पग-पग ऊपर की ओर उठती जाती है तथा मस्तिष्क के केन्द्र ब्रह्माधार तक पहुँच जाती है। इस स्थिति में पहुँचने पर योगी को ज्योति प्राप्त हो जाती है।

इस सिद्धांत में यह वर्णन है कि नासारन्ध्र से प्रारम्भ होकर पीठ के निचले सिरे के निकट समाप्त होने वाली दो प्रणालियाँ मेरु रज्जा में प्रविष्ट हो जाती हैं। यह वर्णन श्वास अंगों के रचना विज्ञान को स्पष्ट

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

करने के इरादे से नहीं किया गया है। वस्तुतः इस सिद्धांत में फेफड़ों (वलोमण) का नाम तक नहीं लिया गया। इसके अतिरिक्त फेफड़ों द्वारा श्वास-क्रिया सम्पन्न होने की कल्पना तक नहीं की गई है। इस सिद्धांत की उत्पत्ति योगाभ्यास की प्रक्रिया के व्यक्तिपरक अनुभवों से हुई है। यह सिद्धांत आन्तरिक संवेदनों के परस्पर मिश्रण का एक चित्र है, जिसमें इससे सम्बन्धित अंगों के रचना विज्ञान का भी थोड़ा-बहुत वर्णन भी आ गया है।

योग की शक्ति

योगाभ्यास की प्रशंसा में स्वामी विवेकानन्द ने कहा है : "शरीर में एक भी मांसपेशी ऐसी नहीं है जिस पर मनुष्य अभ्यास द्वारा नियंत्रण स्थापित न कर सके। यहाँ तक कि अपनी इच्छानुसार योगी हृदय की गति को भी रोक सकता है और उसे पुनः चालू कर सकता है।"

शारीरिक और मानसिक अनुशासन का यह लम्बा दुष्कर पथ उत्साही व्यक्तियों के लिये निस्संदेह ही विभिन्न प्रकार से लाभकारी रहा है। शरीर को विविध आसनों में साधने तथा प्राणायाम से केवल शरीर स्वस्थ एवं स्फूर्तिमान ही नहीं रहता अपितु इन से शरीर के बहुत-से रोगों से मुक्ति और उपचार तक भी हो जाता है। कुछ योगी अपने हृदय की गति को तथा श्वसन को पूर्णरूप से रोके हुए वस्तुतः देखे गये हैं। वह ऐसी भूमिगत वन्द गुफा में कई दिन तक अपने को जीवित और स्वस्थ रख सकते हैं यहाँ वायु की प्रविष्टि के तथा निकलने का प्रश्न ही नहीं उठता। निर्धारित अवधि के पश्चात इन योगियों में पुनः जीवन का संचार हो जाता है।

ऐसे भी प्रदर्शन हो चुके हैं जिनमें नियमनिष्ठ प्रयोगात्मक परिस्थितियों में अपने शरीर का ऐसा ऐच्छिक युक्ति चालन करते हैं कि उनके हृदय की धड़कन की आवाज़ तथा नाड़ी की गति सुनाई नहीं देती। वह लोग यह क्रिया सशक्त अन्तःश्वसन तथा निश्वसन द्वारा करते हैं, जिनके कारण छाती की गुहा में दाव इतना अधिक वढ़ जाती है कि हृदय तक रक्त ले जाने वाली शिराएँ इस दाव के कारण बिल्कुल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रकार हृदय में कम रक्त पहुँचता है और वह कम रक्त फेंकता है और इसकी निर्बल धड़कन कलाई अथवा किसी अन्य स्थान पर स्थित नाड़ी द्वारा अनुभव नहीं हो पाती। एक्सरे में हृदय अपेक्षाकृत छोटा दिखाई देता है, किन्तु,इसकी धड़कन चलती रहती है यद्यपि ये धड़कन निर्बल होती हैं। यह धड़कन इलेक्ट्रो कारडियोग्राम पर भी आलेखित की गई है। यह भी सिद्ध किया गया है कि वायुरुद्ध इन गुफाओं में योगी आक्सीजन के उपयोग तथा कार्बन-डाई-आक्साइड के उत्पादन को, अपने शरीर के अंगों की अनिवार्य क्रियाओं में काफी कमी करके घटा देता है। मस्तिष्क द्वारा नियमित स्वायत्त तथा अंतः-स्रावी प्रणालियों पर अपने नियंत्रण द्वारा योगी क्रियाओं में यह कमी ला देते हैं।

योगाभ्यास द्वारा शरीर की भौतिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण एक ऐसा विचार और शिल्प-विधि है जिसे प्राचीन भारत ने पूर्ण किया तथा संसार के सम्मुख रखा। इसमें तथाकथित उन अलौकिक घटनाओं में से कुछ को समझने की संभावनाएँ भी हैं, जिनका आजकल भारत तथा विदेशों में परा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत गहन रूप से अध्ययन किया जा रहा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रसिद्ध चिकित्सक :

चरक

हम चरक के नाम को चिकित्सा-विज्ञान के प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थ—चरक संहिता के साथ जुड़े होने के कारण युगों से जानते आए हैं लेकिन चरक कौन थे ? कब और कहाँ रहते थे ? इन प्रश्नों के उत्तर अभी तक विद्वद् जनों की अटकलबाज़ी ही बनी हुई है ।

चरक कौन थे ?

फ्रांसीसी प्राच्यवेत्ता सिलवन लेवी ने बौद्ध पुस्तक 'त्रिपिटिका' के चीनी अनुवाद में चरक नाम के व्यक्ति को खोजा है, जो दूसरी शताब्दी ई० में इंडोसीरियन राजा कनिष्क का राज-चिकित्सक था । अपनी इस खोज के आधार पर लेवी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह चरक वही व्यक्ति था जिसका नाम 'चरक संहिता' के साथ जुड़ा है । किन्तु इस अनुमान में कुछ असंगतियाँ हैं । सर्वप्रथम संहिता अथवा किसी भी अन्य कृति को लेखक के साथ इस व्यक्ति का तादात्म्य स्थापित करने का कोई प्रमाण नहीं है । दूसरे, यदि यही व्यक्ति इस संहिता का लेखक होता तो इसे अपनी पुस्तक में कहीं भी उचित ढंग से राजा के नाम का उल्लेख करना चाहिए था । क्योंकि वह अपने सम्मान के लिए राजा पर निर्भर रहा होगा, किन्तु संहिता में कनिष्क का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता । तीसरे, कनिष्क के राज-परिवार में बुद्ध धर्म का सर्वाधिक प्रभाव था, अतः संहिता में भी बौद्धधर्म का कुछ-न-कुछ प्रमाण तो होना ही चाहिये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

था, किन्तु संहिता में इसका कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

यह जानना भी कम रोचक नहीं होगा कि चरक कोई विशेष नाम ही नहीं है अपितु इस शब्द को प्राचीन भारतीय साहित्य में विविध प्रकार से प्रयुक्त किया गया है। इस शब्द को 'वेदों की एक शाखा के अनुयायी', 'एक भ्रमणशील अध्यापक', 'एक प्रकार के कलाबाजी नृत्य का अध्यापक', 'पेटू अथवा खाऊ' आदि कई अर्थों में प्रयोग किया गया है।

कुछ हिन्दू विद्वानों की एक अन्य परिकल्पना यह है कि 'चरक संहिता' के रचयिता चरक वैयाकरण पाणिनि से भी पूर्व हुए थे और पाणिनि का काल ई० पू० छठी शताब्दी माना जाता है। उनका यह अनुमान इस बात पर आधारित है कि पाणिनि द्वारा लिखे गये सूत्रों में 'चरक' नाम का उल्लेख मिलता है,। किन्तु हमें यह ज्ञात है कि पाणिनि ने 'चरक' का प्रयोग वेदों की एक शाखा के अनुयायी-वर्ग के लिए किया है, न कि चिकित्सक चरक के लिए। यजुर्वेद के 'शतपथ' तथा 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में भी इस नाम का उल्लेख है, किन्तु यहाँ भी यह नाम किसी चिकित्सक से सम्बन्धित नहीं है।

एक और विचार यह है कि 'चरक संहिता' के चरक और पतंजलि एक ही व्यक्ति हैं। यह कल्पना कुछ उत्तरकालीन लेखकों की व्याख्या की गड़बड़ पर आधारित है। पतजलि को, जिन्होंने योग विज्ञान को भी प्रतिपादित किया है, ब्रह्मांडीय सर्प (शेष नाग) का अवतार माना जाता है और चरक को भी शेषनाग का अवतार समझा गया है, अतः कुछ व्यक्तियों ने गलत धारणा के आधार पर इन दोनों व्यक्तियों को एक ही मान लिया।

उक्त परिकल्पनाएँ तो केवल अटकलबाज़ियाँ ही प्रतीत होती हैं, किन्तु इस तथ्य का, कि पतंजलि ने चरक की चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तक की टीका लिखी, सुदृढ़ आधार है। उसके टीकाकार चक्रपाणि ने भी इसका समर्थन किया है। पतंजलि ई० पू० 175 में हुए बताये जाते हैं। यदि यह सही है, तब चरक ई० पू० 175 से पहले हुए होंगे। देशज परम्परा (स्मृति) भी चरक को कनिष्क के राज्यकाल से काफी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पहले हुए समझती है और इसे हमें विशेष महत्त्व देना ही चाहिए।

यह ज्ञात नहीं है कि चरक नाम कैसे पड़ गया? चरक उनका व्यक्तिगत नाम था, अथवा उस मत, विचारधारा अथवा दर्शन का नाम है जिससे चरक सम्बन्धित रहे अथवा उनके गोत्र अथवा कुल का नाम है अथवा यह कोई उपाधि थी जो उन्होंने स्वयं ग्रहण की या उनके समकालीनों ने उन्हें इस उपाधि से विभूषित किया? जो कुछ भी हो, यह निश्चित है कि वे आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र में प्रवीण होने के कारण लोकप्रिय हो गये। उन्हें प्रारंभिक काल से ही एक महान गुरु समझा जाता रहा है।

सातवीं, आठवीं और नवीं शताब्दी में, जब अरबी विद्वत्ता अपनी ख्याति के सर्वोच्च शिखर पर थी, चिकित्साशास्त्र के सराकन तथा लेटिन ग्रन्थों में चरक को इस विषय का प्रकांड पंडित माना है। 11वीं से १६वीं शताब्दी तक चक्रपाणि, विजयरक्षित, श्रीकंठ, वाचस्पति कंठदत्त, शिवदास तथा भावमिश्र सरीखे विभिन्न हिन्दू विद्वानों ने चरक संहिता की टीकाएँ लिखी हैं और उन्होंने चरक को चिकित्सा-विज्ञान का एक महान अधिकारी माना है।

उत्तर काल में हिन्दू स्मृति ने इन्हें भीमकाय ब्रह्मांडीय सर्प अनंत शेष का, जिसके फन पर पूरी सृष्टि टिकी है, अवतार मान कर आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के इस श्रेष्ठ विशेषज्ञ की महिमा में और अधिक वृद्धि कर दी, भावमिश्र (1550 ई० के आस-पास ने उनके बारे में लिखते हुए कहा : "सर्पराज शेषनाग वेदों तथा अथर्ववेद के एक उपवेद— आयुर्वेद— में पारंगत हैं। उन्होंने इस संसार में एक मुनि के पुत्र-रूप में जन्म लिया तथा एक भ्रमणशील गुरु की तरह घूमते रहे।" इस प्रकार 'चर' शब्द से, जिसका अर्थ यात्री होता है, वे चरक नाम से विख्यात हो गये। 'चर' में अन्तिम अक्षर जोड़ने से शब्द के भाव में कोई अन्तर नहीं होता।

उनके परिवर्ती काल में चिकित्सा-क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक को 'चरक' का उपाधि नाम दिया जाने लगा, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी श्रेष्ठ ल्यचिकित्सक को धन्वंतरि की उपाधि मिल जाती थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चरक संहिता का मूल

'चरक संहिता' आज हमें जिस रूप में उपलब्ध है, संभवतया उसकी रचना मूलत: आत्रेय के एक प्रतिभावान शिष्य अग्निवेश ने ई० पू० 7वीं अथवा 8वीं शताब्दी में की थी। इसमें आत्रेय की शिक्षाओं का समावेश है। अग्निवेश का ग्रन्थ 11वीं शताब्दी ई० तक उपलब्ध रहा प्रकट होता है।

समय के साथ-साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र के नये सिद्धांत बनते गये, नये-नये उपचार आदि की खोज होती रही। तब यह आवश्यक समझा गया कि अग्निवेश तंत्र का संशोधन किया जाये और यह कार्य चरक ने किया जो सम्भवतया ई० पू० 175 में रहे होंगे। इसी संशोधित संस्करण को 'चरक संहिता' के नाम से जाना गया। इसे नवीं शताब्दी ई० में एक कश्मीरी पंडित व द्रधबल ने पुन: संशोधित एवं सम्पादित किया और यही संस्करण अब हमें उपलब्ध है।

'चरक संहिता' एक विशाल ग्रन्थ है जिसमें आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ से हमें उस प्राचीन काल में चिकित्सा-शास्त्र की पूरी जानकारी मिलती है।

जाति प्रतिबंध

उस समय आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र की शिक्षा तथा व्यवसाय आम तौर पर हिन्दू समाज के तीन उच्च वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों तक ही सीमित था। ब्राह्मणों को चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने को विहित किया जाता था ताकि वे सभी प्राणियों के कष्टों का उपशमन कर सकें, किन्तु उन्हें चिकित्सा-विज्ञान को अपना व्यवसाय बनाकर उससे धन अर्जित करने की मनाही थी। क्षत्रिय इस विज्ञान को स्वयं स्वस्थ रहने तथा शत्रु का और अच्छी तरह सामना करने के लिए अध्ययन करते थे। केवल वैश्य ही धन कमाने के उद्देश्य से इसे व्यवसाय रूप में स्वीकार कर सकते थे। फिर भी शूद्रों समेत सभी वर्गों के सभी व्यक्तियों को चिकित्सा विज्ञान का सामान्य ढंग से अध्ययन करने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लिए प्रोत्साहित किया जाता था ताकि वे नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व को निभाने के लिए स्वयं को स्वस्थ रख सकने में समर्थ हो सके।

चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों का चयन एवं दीक्षा

आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन के इच्छुक प्रत्याशी को, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अपेक्षाओं को पूरा होने की दशा में भी विद्यार्थी बनने की आज्ञा प्रत्याशी द्वारा धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करने के पश्चात ही मिलती थी। इस धार्मिक अनुष्ठान में गुरु तथा अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति तथा प्रार्थना तथा पवित्र अग्नि के समक्ष देवताओं को फूल अर्पित करना सम्मिलित था। इस समारोह का चरम बिन्दु उस समय होता था जब गुरु अपने शिष्य को पवित्र अग्नि के तीन फेरे लगवा कर उसे निम्न शपथ दिलाता था :

चिकित्साशास्त्र की शपथ

"तू ब्रह्मचारी का जीवन बितायेगा, अपने बाल और दाढ़ी बढ़ाएगा, केवल सत्य भाषण ही करेगा। माँस नहीं खाएगा, आहार में केवल शुद्ध वस्तुएँ ही लेगा, ईर्ष्या से मुक्त रहेगा तथा कोई हथियार धारण नहीं करेगा। राजा के प्रति घृणा अथवा किसी अन्य की मृत्यु अथवा कोई भी अधार्मिक कृत्य अथवा विनाश उत्पन्न करने वाले कृत्यों को छोड़ तू सभी अन्य कार्य मेरे आदेश पर ही करेगा।

"तू स्वयं को मेरे प्रति समर्पित कर देगा तथा मुझे अपना स्वामी समझेगा। तू मेरे अधीन रहेगा तथा सदा मेरे कल्याण एवं प्रसन्नता के लिए आचरण करेगा। तू एक पुत्र अथवा दास अथवा आश्रित के रूप में मेरी सेवा करेगा तथा मेरे साथ रहेगा। तू अहंकार-रहित होकर सावधानी और ध्यान से तथा एकाग्रह मन, विनय, स्थायी चिंतन एवं उन्मुक्त आज्ञाकारिता के साथ व्यवहार एवं कार्य करेगा। मेरे आदेश पर या अन्यथा कोई कार्य करते हुए तू अपनी श्रेष्ठतम योग्यताओं के साथ अपने गुरु के हितों की उपलब्धि हेतु ही आचरण करेगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"यदि तू धरती पर चिकित्सक के रूप में तथा मृत्यु के पश्चात स्वर्ग में सफलता एवं ख्याति प्राप्त करने का इच्छुक है तो तुझे गऊ एवं ब्राह्मण से लेकर सभी प्राणियों के कल्याण हेतु प्रार्थना करनी होगी।

"तू दिन-रात भले ही कार्य में व्यस्त रहे, तू अपने जीवन अथवा अपनी रोज़ी की परवाह किये बिना रोगियों को राहत पहुँचाने का हर संभव प्रयास करेगा। तू विचारों में भी परगमन नहीं करेगा। तू दूसरों की वस्तुओं की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा। तू अपनी वेषभूषा एवं जीवन सादा रखेगा। तू शराब का सेवन नहीं करेगा, पाप नहीं करेगा, और न ही किसी प्रकार पापी की सहायता करेगा।

"तू सदा नम्र, शुद्ध, धार्मिक, प्रीतिकर, समुचित, सच्चे, हितकर तथा मृदु वचन बोलेगा। तेरा वर्ताव समय एवं स्थान की दृष्टि से उपयुक्त तथा गत अनुभवों से सतर्कतापूर्ण होगा। तू सदा ज्ञान-प्राप्ति के ध्येय हेतु ही कार्य करेगा।

"तू उन व्यक्तियों का इलाज नहीं करेगा जो राजा से घृणा करते हों अथवा जिनसे राजा तथा प्रजा घृणा करती हो। इसी प्रकार तू उनका भी इलाज नहीं करेगा जिनका चरित्र एवं आचरण अस्वाभाविक, दुष्टतापूर्ण एवं दुःखद हो, जिन्होंने अपने सम्मान को न्यायसंगत न ठहराया हो तथा जो मृत्यु-बिन्दु पर पहुँच चुके हों तथा उस स्त्री का भी उपचार नहीं करेगा जिसकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए उसका पति अथवा कोई संरक्षक मौजूद न हो।

"पति अथवा संरक्षक की आज्ञा बिना किसी स्त्री द्वारा दी गई भेंट को भी तू स्वीकार नहीं करेगा। किसी भी रोगी के घर में तू किसी ऐसे व्यक्ति के साथ ही प्रवेश करेगा जो रोगी का परिचित हो अथवा उसने रोगी की आज्ञा ले रखी हो। तू अपने शरीर को भली-भाँति ढके रहेगा, धीर की भांति सिर झुकाए रहेगा तथा बार-बार विचार करके ही आचरण करेगा। गृह में प्रवेश करने के पश्चात तेरी वाणी, मस्तिष्क, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण रूप से केवल रोगी की सहायता के तथा उसीसे सम्बन्धित बातों के अतिरिक्त किसी अन्य विचार में रत नहीं होंगी।

"रोगी के गृह के विशिष्ट रीतिरिवाजों के बारे में तू अन्य किसी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को भी कुछ नहीं बताएगा। यह जानते हुए भी कि रोगी की जीवन-लीला समाप्त होने वाली है, तू इस बात को वहाँ किसी से भी नहीं कहेगा अन्यथा रोगी या अन्य व्यक्तियों को धक्का लगेगा।

"भले ही तू कितना ही ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, तुझे अपने ज्ञान की बड़ाई नहीं करनी होगी। अधिकांश व्यक्ति उन व्यक्तियों के शेखी बघारने से चिढ़ उठते हैं जो अन्यथा भले एवं विशेषज्ञ होते हैं।"

उक्त शपथ तथा हिपोक्रीत्ज़ की शपथ में समानता ध्यान देने योग्य है।

विद्यार्थी के कर्त्तव्य

इस समारोह के पश्चात वर्षों तक शिष्य अपने गुरु तथा स्वामी के जीवन से जुड़ा रहता था तथा उसके परिवार का एक सदस्य बन जाता था। वह अपने गुरु की सेवा करता था। रोगियों का इलाज करते हुए अवलोकन करता था, विविध प्रकार की कार्य-प्रणालियों, साज़-सामान और शल्य-उपकरणों से परिचित हो जाता था तथा अपने गुरु की प्रत्यक्ष देखरेख में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करता था। कई वर्षों के पश्चात जब गुरु-शिष्य की प्रगति तथा आचरण से संतुष्ट हो जाता था तो वह शिष्य की परीक्षा लेता था। शिष्य के परीक्षा में सफल हो जाने पर गुरु राजा से उस शिष्य को चिकित्साशास्त्र का व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करने की सिफारिश करता था। राज्य चिकित्सक के पद पर नियुक्ति ही किसी चिकित्सक की सर्वोच्च आकांक्षा होती थी। अन्य बातों के अतिरिक्त राजचिकित्सक विष देने की संभावना के विरुद्ध राजा की रक्षा करने के लिए भी उत्तरदायी होता था। इस संकट से कोई भी राजा बहुत ही कम मुक्त रहता था। इसके अतिरिक्त जब राजा किसी शत्रु के विरुद्ध अपनी सेना के साथ रवाना होता था, तब चिकित्सक भी उसकी सेना के साथ जाता था।

चरक के चिकित्सा-विज्ञान का विषय

अपने समय के आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र के वर्णन में चरक ने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विभिन्न विषयों का बृहद् विवेचन किया है। उदाहरण-स्वरूप भ्रूण की उत्पत्ति एवं विकास, मानव-शरीर का शरीर-रचना-विज्ञान, शरीर की कार्यविधि तथा शरीर के तीन पदार्थ—वायु, पित्त, कफ के असन्तुलन अथवा अन्य किसी कारण शरीर की कार्यविधि में अव्यवस्था, विभिन्न रोगों का निदान, वर्गीकरण, विज्ञान निरूपण, पूर्वानुमान तथा उपचार एवं शरीर के कायाकल्प विज्ञान जैसे विषयों का वर्णन किया है

भ्रूण शास्त्र

भ्रूण के प्रजनन एवं विकास के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि भ्रूण-निर्माण में पुरुष-स्त्री दोनों ही—पुरुष अपने वीर्य अथवा स्त्री अपने रज द्वारा योगदान करते हैं। भ्रूण का नर-मादा होना उसमें पुरुष के वीर्य अथवा स्त्री के रज की प्रधानता पर निर्भर होता है। भ्रूण का उभयलिंगी होना दो दशाओं में संभव है या तो भ्रूण में मनुष्य के वीर्य तथा स्त्री के रज में समानुपात हो अथवा वीर्य की प्रजनन-शक्ति समाप्त-प्रायः हो चुकी हो। यदि परिणामी मूल दो या उससे अधिक अंशों में विभाजित हो जाय तो दो या उससे अधिक जुड़वाँ बच्चों को जन्म देता है, इनमें से प्रत्येक के लिंग का निर्धारण गर्भ में मनुष्य के वीर्य एवं स्त्री के रज की सापेक्षिक प्रधानता द्वारा होता है।

भिन्न-भिन्न महीनों में भ्रूण के विकास का वर्णन भी किया गया है। प्रथम मास में भ्रूण की अवलेह के समान आकृति होती है, दूसरे मास में यह कठोर हो जाती है, तीसरे में पाँच विशिष्ट उभार (अभिवृद्धियाँ) प्रकट हो जाती हैं तथा अंगों का मामूली विभेदीकरण होने लगता है। चौथे महीने में अंगों का विभेदीकरण अधिक निश्चित हो जाता है तथा हृदय के कार्य के साथ भ्रूण में चेतनता भी विकसित हो जाती है। पाँचवें महीने में यह चेतना और अधिक स्पष्ट हो जाती है। छठे महीने में बुद्धि का विकास होना भी शुरू हो जाता है। सातवें में अंगों का विकास पूर्ण हो जाता है। बच्चे का जन्म नवें या दसवें महीने में होता है।

भ्रूण-विकास से सम्बन्धित चरक संहिता में दिया गया वर्णन तत्कालीन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्य प्राचीन सभ्यताओं के चिकित्सा-विज्ञान के ग्रन्थों में दिये गए वर्णन से बहुत अधिक अग्रवर्ती है। हमारे वर्तमान ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इसमें कुछ सुधार वांछित हैं किन्तु पश्चिमी संसार 'चरक संहिता' जैसी उपर्युक्त व्याख्या अगले 1500 वर्ष तक भी न कर पाया।

शरीर के विभिन्न भाग माता अथवा पिता से व्युत्पन्न हुए समझे जाते हैं। त्वचा, रक्त, मांस, नाभि, हृदय, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, स्तन, श्रोणि, उदर, आँतों तथा मज्जा की व्युत्पत्ति माता से होती है, सिर के बाल, नाखून, दांत, अस्थि, शिरा तथा वीर्य आदि की पिता से। भ्रूण की वृद्धि एक-दूसरे के ऊपर क्रमिक पर्तों के चढ़ने से होती है। विभिन्न अंगों के प्रकट होने के क्रम के बारे में विवेचकों ने अलग-अलग सम्मतियाँ दी हैं किन्तु चरक ने जोर देकर यह कहा है कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अंग तीसरे महीने में ही प्रकट होने लगते हैं।

जन्म से पूर्व ही भ्रूण के लिंग का पता लगाने के लिए भिन्न-भिन्न लक्षण बताये गये हैं। यदि माता के दायें स्तन में पहले दूध उतर आये वह चलते समय पहले दायाँ पाँव उठाये, उसकी दायीं आँख बड़ी लगे, वह नर नामों वाली वस्तुओं की इच्छा करे, उसे स्वप्न में नर नाम के फूल दिखाई दें, उसके चेहरे पर रौनक आ जाये, वह स्त्रियों की संगति में अधिक रहना चाहे, भ्रूण के कारण उसका उदर बायीं ओर को अधिक निकला हुआ हो, उसका स्वभाव एवं क्रियायें पुरुष-सरीखी प्रतीत हों तो समझना चाहिये कि वह लड़के को जन्म देगी, और इनके विपरीत दिशाओं में लड़की को।

शरीर-रचना-विज्ञान

मनुष्य की शरीर-रचना के बारे में किया गया चरक का वर्णन काफी अल्प विकसित है। शरीर में दांत एवंन ाखूनों सहित अस्थियों की कुल संख्या 360 बताई गई है। 32 दांत होते हैं। 32 दाँतों के कोटर, 20 नाखून, 60 अंगुलास्थियां, 20 लम्बी अस्थियां, 4 लम्बी अस्थियों के आधार, 2 एड़ी, 4 टखने की हड्डी, 4 कलाई की हड्डी, 4 अग्रबाहु की हड्डी, 4 टांग की हड्डी, 2 बाहु की कोहनी के पटल, 2 जांघ की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

खोखली हड्डी, 5 स्कन्धास्थि, 2 हंसली, 2 नितम्बफलक, 1 सार्वजनिक अस्थि, 45 पीठ की हड्डियाँ, 14 वक्षास्थि, 24 पसलियाँ, 24 गर्तों में स्थित गुलिकाएँ, 15 कण्ठास्थि, 1 श्वास-नली, 2 तालुगर्त, 1 निचले जवड़े की हड्डी, 2 जबड़े की आधार-बन्ध अस्थि, 1 नाक, गालों एवं भौंहों की हड्डी, 2 कनपटी तथा 4 पान के आकार की कपालास्थि। (सुश्रुत के अनुसार कुल मिलाकर अस्थियों की संख्या 300 है)।

शरीर की माँसपेशियों को केवल माँसलपिंड ही बताया गया है। ऐसा समझा जाता था कि हृदय के विभिन्न अंगों को जाने वाली दस वाहिकाएँ होती हैं। मस्तिष्क की रचना तथा कार्यों का वर्णन लगभग नहीं के बराबर है। यद्यपि फेफड़ों का उल्लेख है, किन्तु उन्हें श्वसन से किसी प्रकार भी सम्वन्धित नहीं माना गया है।

शरीर-क्रिया-विज्ञान

चरक के अनुसार जो भोजन हम खाते हैं तथा हमारा शरीर भी मिट्टी, अग्नि, जल, वायु तथा आकाश नामक पाँच पंचतत्वों (भूत) से बना होता है। शरीर में ये पंचतत्व रस, रक्त, माँस, वसा, अस्थि मज्जा तथा वीर्य नामक वस्तुओं (धातुओं) के रूप में होते हैं। भोजन का कार्य इन धातुओं का पोषण करना, इनके संतुलन को बनाए रखना तथा पाचन-क्रिया का जारी रखना है। जो भोजन खाया जाता है, वह पहले एक रस में परिवर्तित होता है, तत्पश्चात रक्त, मांस तथा अन्य धातुओं में। पाचन-प्रक्रिया के दौरान एक हलकी प्रतिक्रिया होती है जिससे एक झागदार पदार्थ 'कफ' बनता है। कुछ समय पश्चात जब भोजन अधपचा होता है, तब एक खट्टी प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रतिक्रिया द्वारा आँतों में भोजन से एक तरल पदार्थ—'पित्त' बनता है। आँतों में थोड़ा और नीचे, पचा हुआ भोजन एक सूखे अम्बार में बदल जाता है और इस प्रक्रिया में एक कटु एवं कठोर प्रतिक्रिया आरंभ होती है, जिसमें वात (वायु) उत्पन्न होती है। इस प्रकार उपर्युक्त तीन दोष उत्पन्न होते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दोषों के कार्य

ये त्रिदोष शरीर में वहुत लाभकर कार्य सम्पन्न करते हैं । 'वात' पाँच प्रकार की होती है । यह चलने-फिरने, अन्तःश्वसन, निःश्वसन, वोलने-चालने तथा मलमूत्र को बाहर निकालने के कार्य सम्पन्न होने के लिए क्रियाशील शक्ति प्रदान करती है । 'पित्त' पाचन में सहायता करता है, शरीर को ऊष्मा, आँखों को अच्छी रोशनी, शरीर को अच्छा रंग, मस्तिष्क को प्रसन्नता तथा बुद्धि प्रदान करता है । 'कफ' शरीर के सामान्य भार, यौन-शक्ति, मजबूती, सहन-शक्ति आदि के लिए उत्तरदायी होता है ।

व्यक्ति के शरीर में इस त्रिदोष में या तो संतुलन रहता है अथवा इनमें से किसी एक दोष का प्राधान्य भी हो जाता है । व्यक्ति के शरीर में 'कफ' का प्राधान्य हो जाने पर उसका शरीर तेलहा, चिकना, कोमल साफ तथा देखने में अच्छा हो जाता है । 'पित्त' के बढ़ने पर व्यक्ति गर्मी सहन नहीं कर पाता, उसका शरीर रूखा और नाजुक हो जाता है । 'वात' का आधिक्य होने पर शरीर सूखा, दुबला-पतला तथा छोटे आकार का होता है । जिस व्यक्ति के शरीर में तीनों ही दोष संतुलित होते हैं, वह सामान्यतः स्वस्थ रहता है ।

रोगों का उद्भावन

ज्ञानेन्द्रियों (स्पर्श, स्वाद, गंध, श्रवण, एवं दृष्टि) का अधिक कम अथवा दोषपूर्ण अपावरण, प्रतिकूल मौसम तथा बुद्धि का दुरुपयोग (जैसे अनुपयुक्त भोजन) का प्रभाव तीनों दोषों—वात, पित्त तथा कफ—पर पड़ता है और उनका असंतुलन हो जाता है । यह असंतुलन शरीर की विविध धातुओं पर प्रतिक्रिया करता है और इसी से विभिन्न प्रकार के रोग पैदा होते हैं ।

रोगों का वर्गीकरण कई रीतियों से किया गया है । आंतरिक रोग किसी एक दोष की प्रधानता हो जाने के कारण होते हैं । ये रोग तीन प्रकार के होते हैं—ऐसे जिनका आसानी से इलाज हो सकता है, दूसरे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिनके इलाज में कठिनाई होती है तथा तीसरे असाध्य। रोग अचानक और दुष्ट आत्माओं के प्रभाव से भी उत्पन्न हो सकते हैं। रोग उग्र भी होते हैं तथा मृदु भी।

चन्द्रमा को क्षयरोग ने ग्रसा

निम्न रोचक पौराणिक गाथा यह बताती है कि मानव जाति तथा पशुओं पर क्षय रोग किस प्रकार उतर आया। सृष्टिकर्ता (सर्जनहार) परमात्मा ने अपनी 27 कन्याओं का विवाह राजा चन्द्रमा के साथ कर दिया। किन्तु चन्द्रमा अपनी पत्नियों में से केवल एक से ही प्रेम करता था, और अपना पूरा ध्यान उस रानी की ओर देता था। हताश होकर अन्य पत्नियों ने अपने पिता से शिकायत की। उनके पिता ने अपने दामाद को एक-पत्नीत्व की बुरी आदत के लिए डांटा-फटकारा, किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, फलस्वरूप चन्द्रमा के श्वशुर क्रोधित हो गये तथा चन्द्रमा को हड़पने एवं नष्ट करने हेतु क्षय के राक्षस को उत्पन्न किया। चन्द्रमा ने अपनी भावी दुर्गति का भान होने पर वांछित विवाहित जीवन बिताने का वचन दिया। इस प्रकार चन्द्रमा ने अपनी जान तो बचा ली, फिर भी वह नियत-कालिक क्रमिक क्षय-ग्रस्तता से मुक्त नहीं हो पाया। क्षय का राक्षस मानव-जाति तथा पशुओं को अपना शिकार बनाने के लिए धरा पर उतर आया।

विविध रोगों के विवरण के अतिरिक्त चरक ने आँखों के 96 रोगों, स्त्री के प्रजननांगों के 20 विशिष्ट रोगों, सामान्य तथा असामान्य प्रसव तथा बच्चों के विभिन्न रोगों का भी वर्णन किया है।

रोग-निरूपण

चरक ने रोगी तथा उसके वातावरण की उचित परीक्षा पर बहुत जोर दिया है, ताकि उपचार करने से पहले रोग का सही निरूपण हो सके। उनके अनुसार वह चिकित्सक, जो 'रोगी के शरीर में ज्ञान तथा समझ का दीपक के साथ प्रवेश' करने में असफल रहता है, कभी भी रोग का उपचार नहीं कर सकता। रोग के प्रेरक कारणों, रोगी के शरीर-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गठन, वे रोग, जिनसे रोगी सामान्यतया पीड़ित हो जाता है, रोगी की आयु, उसकी जीवन-शक्ति, मौसम जिसमें उसे रोग हुआ तथा अन्य सम्बन्धित कारकों का चिकित्सक को औषधि, खुराक तथा रोगी के लिए परहेज निर्धारित करते समय अवश्य ध्यान रखना चाहिये ।

पूर्वानुमान

रोगी की शारीरिक अवस्था रोग-निदान, अन्य सम्बन्धित परिवेश शुभ लक्षण तथा रोगी द्वारा देखे गये स्वप्न का अध्ययन करने के पश्चात ही किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति के बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता था।

औषध शास्त्र

चरक के औषधशास्त्र में मुख्यतः वनस्पति पदार्थों का ही समावेश है, यद्यपि जान्तव तथा खनिज पदार्थों का प्रयोग भी यदा-कदा किया जाता था । शरीर पर इन औषधियों की क्रिया के आधार पर इन्हें 50 समूहों में वर्गीकृत किया गया है । औषधियाँ चूर्ण, लेई, निषेक, काढ़ा, गोली, अवलेह, भर्जन, किण्वित, आसवित, औषधिमिश्रित तथा मादक पेय, 'औषधिमिश्रित तैल अथवा घी, सुंघनियाँ तथा मलाशय, मूत्रमार्ग तथा स्त्री-प्रजनन अंगों में इंजेक्शन जैसे विभिन्न रूपों में दी जाती थीं । औषधियाँ अथवा अन्य पथ्यापथ्य विभिन्न धातुओं तथा दोषों में सामान्य संतुलन बनाये रखने अथवा पुनःस्थापित करने में सहायता देते थे ।

चरक के विशाल ग्रन्थ से जर्राहों की विविध श्रेणियों, चिकित्सा के भिन्न-भिन्न विषयों के विशिष्टीकरण, चिकित्सकों की स्थिति और शुल्क, उपचर्या, चिकित्साशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के केन्द्र, न्याय तथा वैशेषिक जैसी दर्शनशास्त्र की विचाराराएँ जिन्हें घचिकित्सा के सिद्धांतों के मूलाधार ने निर्माण किया, चिकित्सा-सम्बन्धी वनस्पति शास्त्र तथा जन्तु-जगत के वर्गीकरण विशेष रूप से उनके माँस के गुण आदि-आदि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के बारे में भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में उस काल के लोगों के विविध रीति-रिवाजों, परम्पराओं, आख्यानों, दैनिक जीवन-चर्या, धूम्रपान तथा मदिरापान की आदतों, वेषभूषा तथा वस्त्रों आदि का भी वर्णन मिलता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शल्य चिकित्सक :

सुश्रुत

हम पहले ही यह कथा पढ़ चुके हैं कि सुश्रुत के नेतृत्व में ऋषि-मुनि देव-चिकित्सक धन्वंतरि के अवतार बनारस के राजा दिवोदास के आश्रम में गये। राजा दिवोदास को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—"हम देख रहे हैं कि मानव-जाति शारीरिक एवं मानसिक रोगों एवं दुखों से पीड़ित है। मनुष्य बाहरी परिस्थितियों द्वारा अथवा अपने शरीर के भीतर से ही उत्पन्न हुए रोगों से ग्रसित हैं। यद्यपि वे दैवी संरक्षकों द्वारा आरक्षित हैं, फिर भी वे त्राहि-त्राहि कर रहे हैं मानो उनका कोई भी रक्षक नहीं है। इस दशा को देखकर हमें पीड़ा होती है और हम सभी प्राणीमात्र के लिए आपसे आयुर्वेद के पवित्र सिद्धान्त को सुनने आये हैं। हमें ऐसी शिक्षा दीजिए कि हम उन लोगों के रोगों को दूर करना जान जाएँ, जो अपनी भलाई के इच्छुक हैं तथा हम अपने जीवन को भी दीर्घायु बना सकें। इस ज्ञान पर इस संसार तथा आगामी संसार का कल्याण टिका है। इसी हेतु हम आपके समक्ष आपके शिष्यों के रूप से उपस्थित हुए हैं।"

धर्मात्मा दिवोदास ने उत्तर दिया, "मेरे शिशुओ, तुम सबका स्वागत है। तुम बिना परीक्षा के ही शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हो।"

सुश्रुत, जो वैदिक युग के मुनि विश्वामित्र के वंशज थे, भारत के महानतम शल्य-चिकित्सक हुए हैं।

शल्य-क्रिया के बारे में लिखे उनके ग्रन्थ का नाम 'सुश्रुत शल्य तंत्र'

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं। इसकी रचना ई० पू० छठी शताब्दी के लगभग हुई लगती है। 'सुश्रुत संहिता' का वर्तमान रूप नागार्जुन द्वारा मूल का संशोधित संस्करण है। नागार्जुन ई० पू० चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए बताये जाते हैं। हिन्दू परम्परा की एक जानी-मानी विशेषता के अनुरूप ही उक्त पौराणिक गाथा का उल्लेख सुश्रुत के संक्लन की प्राचीनता तथा इसके दैवी उद्भव पर ज़ोर देकर इस ग्रंथ को उचित पृष्ठभूमि प्रदान करने हेतु किया गया है।

पूर्व-सुश्रुत काल

सुश्रुत के पूर्ववर्ती काल में भारत में शल्य-चिकित्सा का ज्ञान तथा व्यवहार लगभग उसी स्तर पर था, जिस स्तर पर तत्कालीन सभ्यताओं का मिस्र, मैसोपोटामिया तथा यूनान में। भारत में शल्यक्रिया का व्यवसाय शल्यवैद्य (शल्य-चिकित्सक), भिषक् (चिकित्सक), भिषगाथर्वण (पुरोहित–चिकित्सक), विषहर (ज़हर उतारने वाले) तथा कृत्यहर (पिशाचों के दुष्प्रभाव का उपचार करने वाले चिकित्सक) करते थे। अपने व्यवसाय-हेतु ये लोग रोगियों की तलाश में सड़कों पर आवाज़ लगाते घूमते थे। इनके मकान के चारों ओर जड़ी-बूटियों के उद्यान होते थे। इस बात का उल्लेख मिलता है कि अन्य गौण कार्यविधियों के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर टांग काटने का ऑपरेशन भी किया जाता था तथा उसकी जगह लोहे की टांग लगाई जाती थी। आर्य योद्धाओं के अंगों से वाणों को भी निकाला जाता था। उन दिनों शल्य-चिकित्सकों का उतना आदर नहीं था जितना कि पुरोहित-चिकित्सकों का।

सुश्रुत शल्य-चिकित्सा का व्यवसाय करते थे तथा इसकी शिक्षा भी देते थे। उन्होंने शल्य-क्रिया की सामान्य प्रविधियों में बहुत सुधार किये तथा बहुत-से नये तथाव ड़े ऑपरेशन भी किये। उन्होंने शल्य-क्रिया के विभिन्न उपकरणों का वर्णन भी किया।

शिक्षक-रूप में

अपने शिष्यों के प्रशिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में, सुश्रुत उनसे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वास्तविक चीरफाड़ (ऑपरेशन) कराने से पहले सर्वप्रथम कुछ विशिष्ट प्राकृतिक तथा कृत्रिम वस्तुओं पर बार-बार छुरी का प्रयोग करवाते थे। ये वस्तुएँ शरीर के रोगीले भाग के सदृश होती थीं। शिष्य भिन्न-भिन्न क्रियाओं का अभ्यास करते थे, जैसे विशेष सब्जियों, नक़ली तथा मृत पशुओं में चीरा लगाना, जल से भरे चमड़े के थैलों (मश्कों) तथा मृत पशुओं के मूत्राशय से तरल को निकालना, मृत पशुओं की खाल पर प्रदाहन (दागना), पशुओं की खाल या कपड़े पर तरह-तरह के टांके लगाना और पट्टियाँ बाँधना तथा नकली जानवरों के शरीर पर पट्टी बाँधना।

जिन मानव-शवों की चीर-फाड़ कर विच्छेदन किया जाता था, उन्हें पहले नदीतल के बहते हुए जल में घास से ढक कर रखा जाता था त्वचा को छीलकर मांसपेशी, आन्तरिक अंग तथा अस्थियों का अध्ययन किया जाता था। किन्तु मानव-शरीर के बारे में इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान केवल प्रारम्भिक ही होता था।

इसकी पूर्ति शरीर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण अर्थात् ऐसे मर्मस्थलों के सम्यक् व्यावहारिक ज्ञान द्वारा कर ली जाती थी, जिन पर आकस्मिक अथवा शल्य-क्रिया के दौरान चोट लगने से घातक परिणाम निकलने की सम्भावना रहती है।

सुश्रुत अपने शिष्यों के व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक प्रशिक्षण दोनों ही पर जोर देते थे। यह बात उनके इस कथन से स्पष्ट होती है कि "ऐसा चिकित्सक, जो केवल शास्त्र (सैद्धान्तिक ज्ञान) में पारंगत हो किन्तु उपचार की व्यावाहारिक रीतियों से अपरिचित हो अथवा वह चिकित्सक जिसे उपचार के व्यावहारिक विवरणों का ज्ञान तो हो किन्तु उसने अपने आत्मविश्वास के कारण पुस्तकों का अध्ययन न किया हो, अपने व्यवसाय के लिए अनुपयुक्त होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति राजा द्वारा मारे जाने के योग्य हैं।"

शल्य-चिकित्सा के ऑपरेशन (शल्यकर्म)

सुश्रुत ने ऐसे ऑपरेशन किए तथा उनका वर्णन किया जो गत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कुछ दशक पूर्व तक शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में सर्वाधिक मौलिक आश्चर्य समझे जाते थे। इन ऑपरेशनों में अपच्छेदन (काटना), उत्कीर्णन (चीरा लगाना) खरोचना, छेदन (पंक्चर) जांच-पड़ताल करना, निष्कर्षण (खींच निकालना) तरल पदार्थ को सुखाना तथा टांके लगाना जैसे शल्य-कर्म सम्मिलित थे। सुश्रुत सभी प्रकार के ऑपरेशन करते थे जिनमें अपच्छेदन (काटना) चीरा लगाना, खरोचना, छेदना, गहराई तक जांच-पड़ताल करना, खींच निकालना तरल पदार्थ को खींचना तथा टाँके लगाना जैसे कर्मों का भी समावेश होता था।

वह अस्थिभंग (फ्रेक्चर), सन्धिभंग, अन्त्रवृद्धि (हर्निया), अर्श, नासूर, भिन्न-भिन्न प्रकार की सूजन तथा विजातीय पिंडों का भी उपचार करते थे। आवश्यकता पड़ने पर अंगों को काटा जाता था तथा ठूंठ पर उबले तेल और अन्य औषधियां लगाई जाती थीं। नासिका की प्लास्टिक सर्जरी (नकली नाक बनाना), उदर का ऑपरेशन, मोतिया-बिन्द के लिए आँख का ऑपरेशन, प्रसव के दौरान स्त्रियों के ऑपरेशन तथा मूत्राशय से पथरी निकालना उनकी प्रमुख उपलब्धियाँ थीं।

उन दिनों में कटी हुई नाक के स्थान पर नई नाक लगाने का कार्य असामान्य नहीं था। इस क्रिया का सुश्रुत द्वारा दिया गया वर्णन विशेष रूप से रोचक है। उन्होंने लिखा है, "अब मैं एक कृत्रिम नाक बनाने की प्रक्रिया का वर्णन करूँगा। सबसे पहले लता की एक पत्ती लेते हैं, इतनी लम्बी और चौड़ी जो पूरे कटे हुए अंग को पूर्ण रूप से ढकने के लिए पर्याप्त होती है, फिर गाल पर से इस पत्ती के बराबर जीवित मांस का एक टुकड़ा उतार लेते हैं। इसे उलट कर फुर्ती से कटी हुई नाक पर चिपका देते हैं। कटी नाक को पहले ही छीलकर तैयार रखते हैं। इसके बाद शान्त मस्तिष्क वाले चिकित्सक को इसे धैर्य के साथ पट्टी से बांध देना चाहिए। नासिका-रन्ध्रों में श्वसन की सुविधा के लिए तथा जोड़े हुए मांस को लटकने से बचाने के लिए दो छोटी नलिकाएँ डाल देनी चाहिए। तत्पश्चात मुलैठी, लालचन्दन का चूरा तथा दारु हल्दी के चूर्ण को चिपकाये गए अंग पर छिड़क देना चाहिए। नाक को रुई से लपेट देना चाहिए तथा इस पर धुली तिल्ली के शुद्धीकृत तेल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को कई बार डालना चाहिए। रोगी को खाने के लिए शुद्ध मक्खन देना चाहिए, उसके शरीर पर तेल की मालिश करना चाहिए तथा उसका रेचन से उपचार करना चाहिए। इस प्रकार वने नये घाव के पूरी तरह से भर जाने पर ही नाक चिपकाने की क्रिया को पूर्ण समझा जाना चाहिए। आधे या आंशिक रूप में चिपकी नाक को हटा कर दोबारा खुरचकर बांधा जाना चाहिए। यदि चिपकाई गयी नाक की लम्बाई पहली प्राकृतिक नाक से छोटी रह जाये तो इसे खींचकर लम्बा कर देना चाहिए। यदि नई वनाई गई नाक प्राकृतिक नाक से लम्बी हो गई हो, तो इसे शल्य क्रिया द्वारा प्राकृतिक नाक के आकार का ही वना देना चाहिए।"

सिलाई के लिए चींटी के सिरों का प्रयोग

सुश्रुत ने अपने समय में होने वाले उदर के ऑपरेशन में आंतों के घावों को बांधने के एक अभिनव ढंग का वर्णन किया है। घाव को बांधने में साधारण सामान के प्रयोग से आंतें संकीर्ण हो जाती हैं, अतः उन्होंने आंतों के घाव को मिलाने का एक नया ढंग निकाला। आंत के सिरों को एक-दूसरे के निकट लाकर वह बड़ी चींटियों को आंत के सिरों को काटने के लिए छोड़ देते थे। फिर वह चींटियों के शरीर को काट देते थे। इन चींटियों की चिबुकास्थियाँ शिकंजे की भांति उन सिरों को जकड़ लेती थीं और इन से वाद में शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचती थी। इस रीति को प्रयोग में लाने से पहले अवश्य ही काफी शोध की गई होगी। वाद में इस रीति को अरव वासियों ने भी अपनाया और आज भी दूर-दराज के कुछ स्थानों में प्रचलित है।

प्रसूतिविद्या के क्षेत्र में वस्तुतः ही सुश्रुत की महानता का वोध होता है। अन्य क्रियाविधियों के अतिरिक्त कठिन तथा कष्टदायक प्रसव की निराशाजनक दशा में सुश्रुत ने चिमटी के प्रयोग तथा ऑपरेशन करने का समर्थन किया है। इस ऑपरेशन को आजकल सशल्य गर्भनिष्कासन (सीजिरियन सैक्शन) कहते हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शल्य-क्रिया में प्रयुक्त होने वाले उपकरण

सुश्रुत ने विभिन्न ऑपरेशनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के शल्य-क्रिया उपकरणों का वर्णन किया है। उन्होंने 101 प्रकार के कुन्द उपकरण तथा 20 प्रकार के पैने उपकरण गिनाए हैं। उन्होंने लिखा है कि उपकरण सामान्यतया अच्छे लोहे के बने होने चाहिए, उनका आकार संतुलित हो, उन्हें मजबूती से पकड़ा जा सके तथा उनके सिरे देखने में डरावने न लगते हों। शरीर के विभिन्न भागों पर पट्टी बांधने की उन्होंने 14 भिन्न-भिन्न रीतियाँ बताई हैं। उन्होंने प्रदाहकों के प्रयोग, प्रदाहन, जोंक द्वारा रक्त निकालने तथा शिरा में पंक्चर (छेदन) करने का वर्णन भी किया है।

सुश्रुत ने शल्य-क्रिया के अपने चमत्कारों द्वारा शल्य-चिकित्सा को लोगों की दृष्टि में एक सम्मानीय स्थान तथा चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थियों के प्रशिक्षण में अनिवार्य स्थान दिलाया। सुश्रुत के समय में भारतीय शल्य-चिकित्सा संसार के अन्य भागों में तत्कालीन शल्यचिकित्सा से कहीं आगे और उन्नत दशा में थी और इसकी यही स्थिति अगली कई शताब्दियों तक बनी रही।

सुश्रुत ने अपनी संहिता में आयुर्वेदिक शल्य-क्रिया तथा चिकित्सा-शास्त्र के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित विषयों का वर्णन भी किया है। उदाहरण स्वरूप उन्होंने भिन्न-भिन्न ऋतुओं का जल और सब्जियों पर प्रभाव, तथा उनका मानव-शरीर पर अनुवर्ती प्रभाव, जन्तु-जगत का वर्गीकरण, मानव-शरीर पर आक्रमण करने वाले कीड़ों, विषैली तथा विषहीन जोंकों, जड़ी-बूटियों, क्षार तथा धातुओं का वर्णन किया है।

विविध ऋतुओं का प्रभाव

विविध ऋतुओं के प्रभाव का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है कि वर्षा, शरद तथा हेमन्त ऋतु में पौधों के रस में क्रमशः अम्लीय, खारा तथा मीठा स्वाद होता है तथा पौधों और जन्तुओं को शक्ति एवं ऊर्जा प्राप्त होती है। शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु में रस कड़वा, तीखा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा खट्टा हो जाता है तथा पौधों और जन्तुओं की शक्ति और बल घट जाता है। वर्षा ऋतु में नम वायु के कारण मनुष्य की भूख मन्द हो जाती है, इस ऋतु में जल तथा सब्जियों से पाचन-प्रणाली में अम्लीय प्रतिक्रिया होती है, तथा फलस्वरूप मानव-शरीर में अत्यधिक पित्त बनता है। अगली ऋतु अर्थात् शरद में जब आकाश निरभ्र हो जाता है तब सूर्य-किरणों द्वारा इस बढ़े हुए पित्त का द्रव बन जाता है तथा पित्त दोषग्रस्त रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है। शिशिर और हेमन्त की ठंडी ऋतुओं में सूर्य की किरणों में प्रखरता नहीं रहती तथा तुषारा-च्छादित वायु मनुष्य के शरीर को जड़ीभूत और उदास बना देती है। इस ऋतु में जल और सब्जियों के कारण शरीर में कफ एकत्रित हो जाता है, फलस्वरूप आगामी वसन्त ऋतु में कफ के पिघलने पर कफ के असतुलन के कारण उत्पन्न होने वाले रोग हो जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें मानव-शरीर की तथा इस ऋतु में आने वाली सब्जियों की प्राकृतिक नमी को सुखा देती हैं। फलस्वरूप 'वात' का आधिक्य हो जाता है जो वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में जोर मारता है तथा अव्यवस्थित वायु से उत्पन्न होने वाले रोग हो जाते हैं। अतः उपर्युक्त निरीक्षण को ध्यान में रखते हुए सुश्रुत ने वसन्त ऋतु में कफ, शरदऋतु में पित्त तथा वर्षा ऋतु में 'वात' की अव्यवस्था को नियंत्रण में रखने का परामर्श दिया है ताकि विविध रोगों के लक्षण उत्पन्न होने से पहले ही उन्हें रोका जा सके।

भिन्न-भिन्न ऋतुओं के इन लक्षणों का सुश्रुत ने दिन के भिन्न-भिन्न भागों में भी निरीक्षण किया। बसन्त ऋतु के लक्षण प्रातःकाल, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न, वर्षा ऋतु के सायंकाल, शरद ऋतु के मध्यरात्रि तथा शिशिर ऋतु के लक्षण पौ फटने से पूर्व विद्यमान होते हैं। जल तथा सब्जियों के स्वाभाविक गुण केवल ऋतुओं के सामान्य रहने की स्थिति में ही रहते हैं और यह स्वाभाविक गुण मनुष्य के शरीर में भूख, जीवन शक्ति तथा बल में वृद्धि करते हैं। असामान्य ऋतु से जल तथा सब्जियों के प्राकृतिक गुणों पर दुष्प्रभाव पड़ता है और इसके कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जिस समय कोई रोग या महामारी फैल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रही हो, उस समय सर्वोत्तम बचाव यह है कि इस प्रकार के जल तथा सब्जियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

वायु का प्रभाव

विभिन्न दिशाओं से आने वाली वायु का शरीर पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है । पूर्व से आने वाली वायु ठंडी होती है, इसकी प्रभाविष्णुता हल्की होती है, यह भारी तथा लवण प्रभारित होती है, यह वायु रक्त और पित्त को बिगाड़ती है । यह घाव, फोड़ा अथवा किसी भी विष के प्रभाव में वृद्धि लाती है । किन्तु यह श्रान्त तथा अधीर व्यक्ति के लिए लाभकर है । दक्षिण की ओर से आने वाली वायु हल्की तथा भीनी होती है तथा इसकी प्रतिक्रिया अम्ल जैसी है । हवाओं में यह सर्वश्रेष्ठ होती है तथा आँखों को शक्ति देती है, ताकत बढ़ाती है और रक्त तथा पित्त को शान्त करती है । पश्चिमी वायु सूखी तथा कठोर होती है । यह वसा और कफ को सुखाती है । शरीर की त्वचा इस वायु के सम्पर्क में आने पर खुश्क हो जाती है, तथा इससे ताक़त तेजी से घटती है । उत्तरी वायु ठंडी, स्फूर्तिदायक एवं स्वास्थ्यवर्धक होती है यह शरीर के सभी रन्ध्रों एवं छिद्रों से होने वाले उत्सर्जन में वृद्धि करती है । तथा यक्ष्मा, कृशता एवं विष के प्रभाव से पीड़ित रोगियों के लिए यह वायु अत्यंत हितकारी होती है ।

जन्तु-जगत का वर्गीकरण

सुश्रुत ने जन्तु-जगत को चार बड़े वर्गों में विभाजित किया । पहले वर्ग में वे जन्तु आते हैं जो नमी तथा गर्मी में उत्पन्न होते हैं जैसे कृमि, कीट तथा चीटियाँ । दूसरे वर्ग में वेह जन्तु हैं जो जन्म के समय गर्भनाल धारण किये होते हैं जैसे मनुष्य तथा अन्य जन्तु । तीसरे वर्ग में अंडों से निकलने वाले जन्तु आते हैं जैसे सर्पवर्ग एवं पक्षी । चौथे वर्ग में भूमि से निकल पड़ने वाले जन्तु, जैसे मेढक ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कृमि

मानव-शरीर पर आक्रमण करने वाले भिन्न-भिन्न कृमियों का सुश्रुत ने 20 श्रेणियों में वर्णन किया है। इनमें से सात विष्ठा में पैदा होते हैं, ये सफेद होते हैं तथा एक को छोड़ कर जो वहुत ही लम्बा होता है, सभी कृमि अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। छः प्रकार के कृमि अव्यवस्थित कफ तथा अन्य सात प्रकार के कृमि दूषित रक्त से उत्पन्न होते हैं।

जोंक

जोंकों की वारह जातियों का भी वृहद् वर्णन किया गया है। इनमें से छः प्रकार की जोंक विषैली होती हैं तथा छः विषहीन। प्रत्येक जाति का अपना नाम तथा विशेष लक्षण होते हैं।

चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी वनस्पति विज्ञान

सुश्रुत ने औषधीय पौधों, उन्हें उगाने वाले प्रदेशों, उनके वर्गीकरण तथा उनकी वृद्धि के लिए उपयुक्त भूमि का भी विशद वर्णन किया है। वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों के आधार पर पौधों को चार समूहों में विभाजित किया गया है। प्रथम समूह—में वे वृक्ष हैं जिन पर पुष्पण के विना ही फल लगते हैं। दूसरे समूह में वे वृक्ष हैं जिनपर फल और पुष्प दोनों लगते हैं। तीसरे समूह में झाड़ियाँ तथा भूमि पर फैलने वाली लताएँ आती हैं और चौथे समूह (औषधि) में वे पौधे हैं जो अपने फल पकने के साथ ही समाप्त हो जाते हैं जैसे अनाज के पौधे। भेषज गुणों के आधार पर पौधों के 35 समूहों का एक अन्य वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया गया है। भिन्न-भिन्न पौधों के आहार-मूल्य पर आधारित एक अन्य वर्गीकरण भी दिया गया है।

सुश्रुत यह समझते थे कि पौधे जिस भूमि के टुकड़े में उगते हैं उस भूमि के गुणों को ग्रहण कर लेते हैं। अतः उन्होंने जड़ी-बूटियों तथा भेषज वृक्षों को उगाने के लिए सर्वोपयुक्त भूमि की विशेषताओं का उल्लेख किया है। इस प्रकार की भूमि समतल हो तथा इसमें खाई

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथवा पत्थर न हों। इस भूमि में इससे पहले कभी कोई श्मशान अथवा कोई धार्मिक मंदिर न रहा हो; मिट्टी चिकनी, ठोस, एक समान तथा काली, पीलापन लिए अथवा लाल हो, इसमें बिल्कुल भी रेत, पोटाश अथवा अन्य क्षारीय पदार्थ न हों। यह भूमि बीजों के अंकुरण के लिए अनुकूल हो, पौधों की जड़ें इसमें सरलता से प्रवेश कर सकें तथा इस में जल के किसी निकट स्रोत से वांछित नमी भी होनी चाहिए।

भेषज क्षार

सुश्रुत ने वनस्पति उत्पादों से ही विभिन्न शक्ति वाले क्षार तैयार करने की रीतियों का वर्णन भी किया है। इन्हें विविध रोगों में त्वचा के ऊपर लगाया जाता था। इस प्रक्रिया के प्रवर्तन के लिए एक निश्चित धार्मिक विधि भी बताई गई है। इस प्रकार के क्षार को तैयार करने से पहले चिकित्सक को सर्वप्रथम अपने शरीर और मस्तिष्क को शुद्ध करना चाहिए तथा शरद ऋतु में किसी शुभ नक्षत्र में एक दिन का उपवास रखना चाहिए। तत्पश्चात् पहाड़ी की चोटी पर जाकर उसे एक मध्य आयु के ऐसे आशित मुश्क (पूर्ण उगे हुए पौधे) का चयन करना चाहिए जो उक्त बताई गई उपयुक्त भूमि पर उग रहा हो तथा उस भूमि पर किसी प्रकार का भी दुष्प्रभाव न हो। फिर पूर्वोक्त वृक्ष की अन्तरात्मा का औपचारिक रूप में आवाहन करके अगले दिन चिकित्सक को निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुए उस वृक्ष को काटना चाहिए।

"तुझ में शक्तिवान सद्‌गुण विद्यमान हैं, तू प्रचंड शक्ति से युक्त है, तेरी शक्ति कभी भी क्षीण अथवा लुप्त न हो ओ! आनन्दमय प्राणी! यहीं रुक, मेरे कार्य को सम्पन्न करा दे और मेरा कार्य सम्पन्न होने के पश्चात तू स्वर्ग प्रदेश में जाने के लिए मुक्त होगा।"

सहस्रों सफेद तथा लाल फूलों की भेंट देकर इस अनुष्ठान को पूर्ण करने के पश्चात चिकित्सक को वृक्ष के छोटे-छोटे टुकड़े कर उन्हें वायु से सुरक्षित किसी स्थान पर रखना चाहिए। इसके पश्चात क्षार बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती थी, जिसमें यह लकड़ी एक प्रमुख अवयव होती थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धातु और उनके यौगिक

सुश्रुत ने नाना प्रकार की धातुओं तथा उनके यौगिकों का वर्णन किया है। स्वर्ण के बारे में उन्होंने लिखा है कि इसमें मीठा तथा रुचिकर स्वाद होता है। यह शक्तिवर्धन का कार्य करता है, शरीर को निश्चलता प्रदान करता है तथा शरीर के तीनों दोषों की अव्यवस्था को कम करता है। यह शीतलता प्रदान करता है, विष की काट करता है तथा आँखों की रोशनी को बढ़ाता है। रजत में अम्लीय स्वाद होता है, यह मृदु रेचक है, इसकी शक्ति शीतलता प्रदायक है तथा यह पित्त और वात को नष्ट करता है। ताम्र का स्वाद मीठा एवं तीखा होता है। यह संक्षारक मृदुरेचक है तथा इसकी शक्ति भी शीतलतादायक है। कांसा कड़वा होता है, कफ और वात को कम करता है। अपनी सामर्थ्य-भर शीतलता प्रदान करता है, प्यास दूर करता है तथा पित्त और कफ की अव्यवस्था का दमन करता है। जस्त और सीसा नमकीन होता है तथा शरीर के भीतर कृमियों का नाश करता है। मोती, मूंगा, हीरा, नीलम, लाजवर्द आंखों की रोशनी के लिए हितकर होते हैं तथा अपनी सामर्थ्य-भर शीतलता प्रदान करते हैं।

अरबी अनुवाद

'सुश्रुत संहिता' का आठवीं शताब्दी ई० की समाप्ति से पहले ही अरबी भाषा में अनुवाद किया गया था। इस अनुवाद का नाम 'किताब शाशून-ए-हिन्दी 'अथवा' किताब-ए-सुसरुद था। प्रसिद्ध अरबी चिकित्सक रहजिज़ ने सुश्रुत संहिता से काफी उदाहरण दिए हैं तथा 'सरद' (सुश्रुत) को शल्य-चिकित्सा का एक प्राधिकारी माना है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एक महान् चिकित्सक :

बाग्भट्ट

प्राचीन भारतीय चिकित्साशास्त्र स्मृति के अनुसार वाग्भट्ट चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में तीन महान विभूतियों अर्थात् 'वृद्धत्रयी' में से एक हैं। अन्य दो विभूतियाँ आत्रेय तथा सुश्रुत हैं। भारतीय चिकित्साशास्त्र में वाग्भट्ट का वही स्थान है जो पश्चिम के मध्यकालीन चिकित्साशास्त्र में गैलेन का।

वाग्भट्ट एक या दो ?

प्राचीन काल में 'अष्टांग संग्रह' (आक्टोपारटाइट विज्ञान का संक्षिप्त विवरण) तथा 'अष्टांग हृदय संहिता' (आक्टोपारटाइट विज्ञान का सार) वाग्भट्ट द्वारा रचित समझे जाते थे किन्तु वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से इस वात पर कुछ विवाद और भ्रांति उत्पन्न हो गई है कि इन पुस्तकों का रचयिता वाग्भट्ट एक ही व्यक्ति था अथवा इन पुस्तकों की दो अलग-अलग वाग्भट्टों ने रचना की। प्रख्यात विदेशी तथा कुछ भारतीय प्राच्यविदों का भी यही विश्वास है कि वाग्भट्ट नाम के दो व्यक्ति थे। उनका यह विचार 'अष्टांग हृदय' के एक परिच्छेद पर आधारित है। उनका कहना है कि इस परिच्छेद में यह स्पष्ट उल्लेख है कि यह ग्रन्थ 'अष्टांग संग्रह' नामक एक पूर्वरचित ग्रन्थ पर आवारित है जिसकी रचना वाग्भट्ट ने की थी।

इसके विपरीत, दोनों ग्रन्थों को एक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मानने वाले विद्वान यह तर्क देते हैं कि प्राचीन चिकित्साशास्त्र स्मृति तथा इन ग्रन्थों के मध्यकालीन व्याख्याकारों ने इन दोनों पुस्तकों का रचयिता एक ही व्यक्ति को माना है । 'अष्टांग संग्रह' की तुलना में अष्टांग-हृदय में उत्तम विवेचना तथा अधिक परिपक्व विचार उपलब्ध होने का कारण यह है कि इस ग्रन्थ की रचना लेखक ने उस समय की जब उनकी आयु पर्याप्त अधिक हो चुकी थी, उन्हें अनुभव भी अधिक हो चुका था और वह अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहने की अपेक्षा अपने विचार और दृष्टिकोण बनाने में समर्थ हो गये थे । इसके अतिरिक्त लेखक ने 'अष्टांग संग्रह' के श्लोक ज्यों-के-त्यों ही उतार कर 'अष्टांग हृदय' में रख दिये हैं, जब कि चरक और सुश्रुत संहिता के संदर्भों को उन्होंने अपनी भाषा में दिया । इस मत के विद्वानों का कहना है कि इस बात से यह सिद्ध होता है कि दोनों ग्रन्थों का लेखक एक ही व्यक्ति था और उसने उत्तर काल में रचित ग्रन्थ में अपनी पूर्व-रचित सामग्री का उपयोग किया ।

भावी शोधकार्य कुछ भी प्रमाणित करे, इस समय तो इस के असंदिग्ध एवं समयोचित प्रमाण हैं कि चिकित्साशास्त्र के उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के रचयिता दो भिन्न-भिन्न वाग्भट्ट थे ।

वाग्भट्ट का परिचय

'अष्टांग-संग्रह' तथा 'अष्टांग हृदय' दोनों में ही यह वर्णन मिलता है कि वाग्भट्ट सिंह गुप्त के पुत्र थे, उनका जन्म सिन्धु नदी के निचले भाग के आस-पास वाले क्षेत्र सिन्ध देश में हुआ था । उन्होंने एक बौद्ध आचार्य अवलोकित की देखरेख में अध्ययन किया । अष्टांग हृदय के प्रत्येक खंड के प्रारम्भ में दी गयी प्रार्थना बुद्ध के प्रति समर्पित जान पड़ती है, किन्तु देवता, गौ, ब्राह्मण, चिकित्सक, राजा तथा अतिथि के प्रति श्रद्धा रखने के आदेश तथा प्रायश्चित्तिक अनुष्ठान करने की संस्तुति से वैदिक प्रभाव भी प्रदर्शित होता है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि वाग्भट्ट जन्म से वैदिक ब्राह्मण थे, किन्तु उन पर गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा और अपने जीवन के उत्तरकाल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में उन्होंने बौद्ध धर्म को अंगीकार किया। वाग्भट्ट के समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु सामान्य सम्मति यह है कि वाग्भट्ट छठी शताब्दी के अन्त और सातवीं शताब्दी के अन्त के मध्यान्तर में रहे होंगे और इस काल में दोनों ग्रन्थों की रचना हुई होगी। तिब्बती, चीनी तथा अरबी स्रोत भी इस मत का समर्थन करते हैं।

अष्टांग संग्रह

आज भी पूरे भारत और दक्षिण में विशेष रूप से अष्टांग संग्रह' का अध्ययन किया जाता है। इसकी रचना श्लोक एवं गद्य—दोनों शैलियों में की गई है। इसमें चरक और सुश्रुत की चिकित्सा-शास्त्र-सम्बन्धी धारणाओं का विवेचन किया गया है तथा इसमें ग्रन्थ के लेखक के कुछ मौलिक विचारों का भी समावेश है। इस प्रकार यह पुस्तक उक्त दोनों संहिताओं को सत्यापित करने तथा उनमें अभिवृद्धि करने में अत्यन्त सहायक है।

यह पुस्तक छः खंडों में विभाजित है और इसमें कुल १५० अध्याय हैं। इसमें वर्ण्यविषय के विश्लेषण से हमें उस प्राचीन काल के दौरान आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र के बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। प्रथम खंड में चिकित्साशास्त्र के व्यवसाय का वर्णन है। इस खंड में भिन्न विषयों का विवेचन किया गया है—विद्यार्थियों की दीक्षा, दीर्घायु और इसे प्राप्त करने की रीतियां, दैनिक मौसम तथा ऋतु के अनुसार अनुपालन, रोगों की उत्पत्ति, चावल, मांस, शाक, फल आदि नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों के गुण, विषाक्त भोजन की विशेषताएँ, विषाक्त भोजन खाये हुए रोगी का उपचार, विष से बचने के लिए राजा द्वारा बरतने वाली सावधानियां, भोजन का असामंजस्य, व्यक्तिगत स्वास्थ्यविज्ञान, औषधियाँ और उनका उपविभाजन, औषध पदार्थों की रचना, स्वाद-शक्ति, गुण तथा क्रियाएँ, वमनकारी एवं संकोचक औषधि, त्रिदोष—वात, पित्त और कफ तथा उनकी अव्यवस्था, विभिन्न रोग, रोगी का परीक्षण, उपचार के सिद्धांत, सुंघनी, धूमक पदार्थ, गरारे करना,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शीतलता दायक लेपों से आँख के रोगों का उपचार, आँख में डालने वाली दवाई, शिरा शल्य-क्रिया, बाहरी वस्तुओं का शरीर से निकलना, प्रदाहक एवं पदार्थ तथा उनके उपयोग।

दूसरे खंड में मुख्यतः मानव-शरीर-रचना विज्ञान का वर्णन है। इसमें गर्भ और भ्रूण की शरीर-रचना, कठिन प्रसव की व्यवस्था, गर्भ के रोग, मानव-शरीर-रचना विज्ञान, संवहन प्रणाली, शरीर के प्रमुख अंग, मनुष्य के स्वभाव, विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों एवं उनकी विशेषताओं तथा असामान्य व्यक्तियों तथा प्रेतात्माओं एवं दूतों पर आधारित पूर्वानुमान का विवेचन है। तीसरे खंड में ज्वर, रक्तस्राव दमा, क्षय, कम्पोन्माद, अर्श, अतिसार, मूत्र-अवरोधन, मधुमेह, गहरे फोड़े, उदर रोग, रक्त-क्षीणता, कुष्ठ, त्वचा के रोग तथा स्नायुतंत्र के रोग आदि नाना प्रकार के रोगों के कारण तथा रोग-विज्ञान का वर्णन है। चौथा खंड विरेचन तथा वमन पर है। पांचवें तथा अन्तिम खंड में बच्चों का लालन-पालन उनके रोग, बच्चों का पिशाचों के दुष्प्रभाव में ग्रस्त होना तथा उनका उपचार, अतिमानवीय प्रभाव तथा उनसे उत्पन्न रोग एवं उनके उपचार, पागलपन का उपचार, मिरगी, अंधापन और सूजन-समेत आंखों के विविध रोग, कान, नाक, मुख और सिर के रोग, फोड़े, घाव अस्थिभंग, नासूर ग्रन्थीय अभिवृद्धि, गौण रोग, विषाक्तिकरण तथा सांप, कीड़े, मकड़ी और चूहे के काटे का उपचार, विषहर पदार्थों, कायाकल्प तथा कामोत्तेजक पदार्थों के प्रयोग का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अष्टांग हृदय संहिता

'अष्टांग हृदय संहिता' में छः खडों में विभाजित १२० अध्याय हैं। इसमें चरक, सुश्रुत, भेल, निमि, कश्यप, धन्वतंरि तथा अन्य प्राचीन लेखकों और उनकी कृतियों एवं स्वयं लेखक की मूल कृति के भी उद्धरण दिये गये हैं। किन्तु इस पुस्तक का मुख्य स्रोत 'अष्टांग संग्रह' ही है। इसमें 'सुश्रुत संहिता' में वर्णित शल्य-क्रिया विशिष्ट संदर्भ के साथ संपूर्ण आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र का सुवोध वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अफीम के प्रयोग, नाड़ी देखने तथा अन्य धातुकर्मीय प्रक्रियाओं का उल्लेख नहीं है।

टीका-टिप्पणियाँ

'अष्टांग संग्रह' तथा 'अष्टांग हृदय संहिता' को आयुर्वेदिक चिकित्सा के व्यवसायी व्यक्ति आज भी प्रामाणिक ग्रन्थ समझते हैं। उत्तरकालीन लेखकों जैसे शार्ङ्गधर, चक्रपाणिदत्त और भावमिश्र ने इन ग्रन्थों को व्यापक रूप से उद्धृत किया है। प्रमुख विद्वानों द्वारा इन ग्रन्थों पर लिखी गई टीकाओं की अधिक संख्या इन ग्रन्थों की लोकप्रियता के प्रमाण हैं। 'अष्टांग हृदय संहिता' में चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले अंश को आज भी लेखक का सर्वश्रेष्ठ योगदान समझा जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रोग-विषयक निदान-शास्त्री :

माधवकर

चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट्ट के पश्चात आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र सुदृढ़ नींव पर स्थापित हो चुका था। मावधकर अथवा माधवाचार्य ने जिन्हें रोगनिदान का एक अग्रणी विशेषज्ञ समझा जाता था, रोग-विज्ञान एवं रोग-निदान-क्षेत्र में और आगे विकास किया। माधवकर ने आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र में 'प्राचीन त्रयी' के समान ही विशिष्ट ख्याति अर्जित की। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रुग्विनिश्छाया' में, जिसे आमतौर पर माधवनिदान अथवा केवल निदान नाम दिया जाता है, माधवकर की इसी विशिष्टता का विवेचन है।

माधवकर को इन्दुकर का पुत्र वताया जाता है। उनका जन्म दक्षिण भारत स्थित किष्किंधा (जिसे अव गोलकुंडा कहते हैं) में हुआ था। सायण नामकउसके भाई ने ऋग्वेद पर एक श्रेष्ठ टीका की रचना की थी, जिसमें माधवकर ने भी योगदान किया वताते हैं। माधवकर ने हिन्दू दर्शन, धर्म तथा खगोलविज्ञान पर भी कई पुस्तकें लिखीं। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने दक्षिण भारत के विजयनगर के राजा वीर बुक्का के प्रधानमंत्री के रूप में काम किया। अपनी वृद्धावस्था में वह साधु हो गए तथा विद्यारण्य (विद्या का वन) नाम धारण किया।

माधव-निदान

भारतीय चिकित्साशास्त्र के इतिहास में 'निदान' में सर्वप्रथम केवल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रोग विज्ञान तथा रोग निदान का विस्तृत विवेचन किया गया है जब कि इन से पूर्व के लेखकों ने अपनी कृतियों में चिकित्साशास्त्र की इस शाखा के बारे में केवल एक खंड में ही वर्णन कर दिया था। इस पुस्तक में वर्णित प्रमुख रोगों के कारण, लक्षण एवं जटिलताओं के क्रमबद्ध विवेचन ने वृन्द, वंगसेन तथा चक्रपाणि जैसे भावी लेखकों के लिए एक उदाहरण स्थापित किया। इस पुस्तक में रोगों के वर्णन की चरक एवं सुश्रुत संहिता के वर्णन से तुलना करने पर इस विषय की महत्त्वपूर्ण उन्नति प्रकट होती है। इसमें चेचक पर एक पूरा अध्याय दिया गया है, जबकि पूर्व-कृतियों में इसका वर्णन संक्षिप्त रूप में ही किया गया था। किन्तु इसमें चरक एवं सुश्रत संहिता से बहुत से उद्धरण ज्यों-के-त्यों ही दिये गये हैं। इससे यह प्रकट होता है कि इसमें उन स्रोतों से बहुत कुछ गृहीत है।

माधव का समय

आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के अध्ययन से यह पता चलता है कि वागभट्ट ने चरक और सुश्रुत का उल्लेख किया है किन्तु माधव के निदान का नहीं; इससे यह संकेत मिलता है कि वाग्भट्ट माधव से पहले हुए थे दूसरी ओर माधव के ग्रन्थ में द्रधवल द्वारा किये गये 'चरक संहिता' के संशोधित पाठ का उल्लेख नहीं मिलता। जिससे यह संकेत मिलता है कि माधव द्रधवल से पहले हुए होंगे। माधव निश्चित रूप से वृन्द से पहले हुए हैं।

इन कथनों से इन लेखकों के जीवन-क्रम का कुछ अनुमान तो हो जाता है किन्तु इससे माधव के जीवन-काल का स्पष्ट पता नहीं चल पाता। केवल अनिश्चित रूप से ही यह कहा जा सकता है कि माधव नवीं अथवा दसवीं शताब्दी ई० में रहे होंगे।

टीकाएँ

उत्तर काल में माधव के 'निदान' पर बहुत सी टीकाएँ लिखी गईं, जिनसे इस कृति की ख्याति और लोकप्रियता का आभास होता है। इन टीकाओं में चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में विजयरक्षित और श्री-कंठ दत्त द्वारा रची गई टीकाएँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वृन्द

वृन्द के जीवन के बारे में, यद्यपि, कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसके रचे हुए चिकित्सा-रसायन से सम्बन्धित सिद्धयोग नामक ग्रन्थ ने वृन्द को आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के इतिहास में एक प्रमुख स्थान दिला दिया है। वह माधवकर के बाद तथा चक्रपाणि दत्त से पहले रहा होगा। उसका जीवन-काल 1000 ई० के लगभग बताया जाता है।

सिद्धयोग

इस ग्रंथ में माधवकर, वाग्भट्ट, नागार्जुन, सुश्रुत और चरक जैसे पूर्ववर्ती विद्वानों की कृतियों से ली गई बहुत सी सामग्री का समावेश है। इसमें विविध रोग तथा उनके उपचार, पुनर्यौवन प्रदायक पदार्थ एवं दीर्घायु प्राप्त करने के लिए अक्सीर औषधियों तथा सामान्य स्वास्थ्य विज्ञान का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में विविध रोगों में दिये जाने वाले नाना प्रकार के धात्विक यौगिकों को तैयार करने की विधियों का वर्णन भी मिलता है। जूएँ मारने के लिए वाह्य रूप से लगाये जाने वाले पदार्थ से पारा भी एक अवयव बताया गया है। इसमें लोहे की भस्म बनाने की रीति भी बताई गई है। पहले लोहे का चूर्ण बनाया जाता है, उसे आग में लाल हो जाने तक गर्म किया जाता है, फिर उसे हरड और त्रेविया औषधियों के रस में डुबोकर धूप में रख दिया जाता है। इसके पश्चात इसे पुनः कुछ अन्य पौधों के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रस में मिलाकर खरल में घोटा जाता है। इस ग्रन्थ में तांबे और पारे के सल्फाइड तैयार करने की रीति का वर्णन भी दिया गया है। 'रसामृत चूर्ण' नामक औषधि में पारे का सल्फाइड मुख्य अवयव होता है, जिसमें एक भाग गन्धक को उससे आधे भाग पारे के साथ घोटा जाता है।

उत्तरकाल में श्री कंठदत्त ने सिद्ध योग पर एक टीका लिखी थी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

काश्मीर के चिकित्सक :

द्रधबल

काश्मीर के प्राचीन और मध्यकाल के दौरान कई महान् विद्वानों का जन्म हुआ। उनकी उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए हम आज भी गौरवान्वित महसूस करते हैं। इन विद्वानों में एक थे द्रधबल, कपिबल के पुत्र। वे आयुर्वेदिक चिकित्सक थे और 9वीं शताब्दी ई० के आस-पास रहे होंगे। वह पंचनंदपुर के मूल निवासी थे, इसे आजकल पिंजौर कहते हैं और श्रीनगर के सात मील उत्तर में स्थित है तथा यह स्थान त्रिगमा, वितस्ता (झेलम), सिन्धु, क्षीर भवानी तथा अनाकरा नामक पाँच नदियों के संगम से ज्यादा दूर नहीं है।

आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र के महान् ग्रन्थ 'चरक संहिता' की पुनर्रचना तथा पुनर्सम्पादन करके जो योगदान द्रधबल ने किया, उसी के कारण उनका नाम आज तक विख्यात है। इस ग्रन्थ में महान प्राचीन मुनि आत्रेय की शिक्षाओं का समावेश है और मूलतः इसकी रचना उनके शिष्य अग्निवेश ने ई० पू० आठवीं या सातवीं शताब्दी में की थी। उस समय इसे 'अग्निवेश तन्त्र' कहा जाता था। ई० पूर्व २०० से पहले कभी महान चरक ने इसका संशोधन किया और तब इसे 'चरक संहिता' का नाम मिला। जिस रूप में चरक संहिता आज हमें उपलब्ध है, यह रूप उसे द्रधबल ने ९वीं शताब्दी ई० में दिया था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चरक संहिता में योगदान

वर्तमान चरक संहिता के मूलपाठ में ही यह उल्लेख मिलता है कि द्रघबल ने इसमें कितना योगदान किया है। "संशोधन कर्ता (द्रघबल) ने संक्षिप्त को विस्तृत कर दिया है तथा अनर्थक विस्तार को संक्षिप्त कर दिया है और इस प्रकार एक प्राचीन कृति को अद्यतन बना दिया। इस प्रकार, सब ग्रन्थों में इस सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ के मूल पाठ का, जो सत्य एवं प्रज्ञा से भरपूर है और जिसका संशोधन-सम्पादन अत्यन्त प्रवुद्ध विद्वान चरक ने किया है, केवल तीन-चौथाई अंश ही अब उपलब्ध है। इस ग्रंथ को सम्पूर्ण बनाने के लिए द्रघबल ने प्राणियों के देवता भगवान शिव का आवाहन कर इसके लुप्त अंश को पूरा दिया। द्रघबल ने चिकित्सा स्थान के खंड में सतरह अध्यायों की वृद्धि की तथा कल्पस्थान सिद्धिस्थान में परे दो खंड और जोड़े। इसके लिये उन्होंने आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों से सामग्री का चयन किया। अतः यह ग्रन्थ शैली अथवा विषयवस्तु की दृष्टि से किसी भी प्रकार त्रुटिपूर्ण नहीं है, किसी वैज्ञानिक ग्रन्थ के जाने-माने दोषों से भी मुक्त है तथा व्याख्या के छत्तीस सिद्धान्तों से अलंकृत है। इस प्रकार द्रघबल का योगदान संपूर्ण ग्रन्थ के लगभग एक-तिहाई के बराबर बैठता है।

द्रघबल ने यह भी सूचना दी है कि उन्होंने उस समय उपलब्ध बहुत से ग्रन्थों से भी सहायता ली। वर्तमान अनुमान के अनुसार इन ग्रन्थों में अग्निवेश के मूल तंत्र, वाग्भट्ट के 'अष्टांग संग्रह' तथा माधवकर के निदान सम्मिलित रहे होंगे। द्रघबल द्वारा सम्पादित संस्करण माधव के जीवन-काल के पश्चात ही अस्तित्व में आया, क्योंकि इसमें माधव द्वारा चरक संहिता से लिए गए उदाहरणों का श्रेय स्वयं चरक को ही दिया गया है।

अपने योगदान के बारे में द्रघबल के कथन की पुष्टि इस ग्रंथ के परवर्ती टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने की है। द्रघबल द्वारा संशोधित संहिता का हवाला (संदर्भ) उस के टीकाकार चक्रपाणिदत्त और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विजयरक्षित ने 'काश्मीर पथ' की संज्ञा से दिया है।

चरक संहिता के कुछ अंश तो दृढ़बल के समय लुप्त हो ही चुके थे। यदि दृढ़बल ने संहिता की पुनर्रचना न की होती, तो यह भी सम्भव था कि संहिता पूर्ण रूप से ही अप्राप्य हो जाती।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भावमिश्र

भारतीय चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में महान व्यक्तियों में भावमिश्र अन्तिम व्यक्ति हैं। यह लटक मिश्र के पुत्र थे तथा १५५० ई० में बनारस में रहते थे। इन्हें अपने समय में चिकित्सकरत्न तथा सर्वश्रेष्ठ विद्वान समझा जाता था। यह कहा जाता है कि इन्होंने कम-से-कम ४०० विद्यार्थियों को चिकित्सा-शास्त्र में दीक्षित एवं प्रशिक्षित किया।

भाव प्रकाश

इन्होंने 'भाव प्रकाश' नामक एक वृहद ग्रन्थ का संकलन किया। इस ग्रन्थ में इन्होंने अपने पूर्ववर्ती लेखकों की उपलब्ध कृतियों में से सर्वश्रेष्ठ सामग्री का चयन किया है तथा अपने विचार और अनुभव भी प्रस्तुत किए हैं। इस संकलन में, भावमिश्र ने भारतीय चिकित्सा शास्त्र की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड शास्त्र, मानव-शरीर-रचना-विज्ञान, भ्रूण-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान, रोग-विज्ञान चिकित्सा, बच्चों के रोग, शल्य-चिकित्सा, औषधशास्त्र, रोगोपचार, आहार विज्ञान, पुनर्यौवन-प्राप्ति के लिए पदार्थों तथा दीर्घायु के लिए अक्सीर पदार्थों का क्रमबद्ध विवेचन किया है। उनकी स्पष्ट शैली तथा विषयवस्तु के सुन्दर क्रम ने प्राचीन लेखकों के बहुत से अस्पष्ट और विवादास्पद विचारों पर नयी रोशनी डाली है। इन्होंने प्रथम बार भारत के अन्य देशों की औषधियों का उल्लेख किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

फिरंग रोग

भावमिश्र के समय में यूरोपीय देशों के वासियों, विशेषकर पुर्तगाल-निवासियों का व्यापार द्वारा धनोपार्जन करने के लिए भारत में ग्राना ग्रारम्भ हो चुका था। उनमें से बहुत से विदेशी ग्रातशक के रोगी थे ग्रौर उनसे यह रोग भारत के निवासियों को भी लग गया। भारतीय चिकित्सक इस महा विपत्ति से बिलकुल ही ग्रपरिचित थे।

चिकित्साशास्त्र के पूर्व-ग्रन्थों में प्रजनन ग्रंगों के ग्रन्य रोगों का वर्णन तो था, किन्तु उनमें से किसी भी ग्रन्थ में इस रोग का बिलकुल भी उल्लेख नहीं था। इस रोग के लिए एक नए नाम की ग्रावश्यकता हुई। भारत में विदेशियों द्वारा लाये जाने के कारण इस व्याधि को 'फिरंग रोग' का नाम दिया गया। भावमिश्र ने इस बीमारी की तीन ग्रवस्थाएँ बताई हैं—प्रथम बाह्य, दूसरी ग्राभ्यन्तर तथा तीसरी बाह्य एवं ग्रान्तरिक दोनों ग्रर्थात् बहिरन्तर। पहली ग्रवस्था में रोग को साध्य बताया है। दूसरी ग्रवस्था में जोड़ों पर इस रोग का प्रभाव हो जाता है, तब इस रोग का उपचार होना कठिन होता है। तीसरी ग्रवस्था के रोग को भावमिश्र ने ग्रसाध्य घोषित किया है। उसके ग्रनुसार इस रोग से पीड़ित व्यक्ति दुबला ग्रौर कमज़ोर हो जाता है, उसकी नाक लटक जाती है, भूख में कमी हो जाती है ग्रौर उसकी ग्रस्थियां खुश्क तथा टेढ़ी हो जाती हैं। रस कपूर के रूप में पारा, कत्था, स्पाईलेन्थिस ग्रॉलेरेकिया तथा शहद को इस रोग के उपचार की ग्रौषधियाँ बताया गया है। इसके ग्रतिरिक्त कुछ ग्रन्य नुस्खों का उल्लेख भी है।

भावमिश्र द्वारा रचित 'भाव प्रकाश' ग्राज भी लोकप्रिय है तथा भारत के ग्रायुर्वेदिक चिकित्सक ग्राज भी उसका उपयोग करते हैं। भाव मिश्र ने ग्रौषधिविज्ञान पर गुण-रत्नमाला नामक एक छोटी पुस्तक भी लिखी है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आनन्दराय भारवी द्वारा हिन्दू चिकित्सा-विवेक का चित्रण

17 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत स्थित तंजौर में आनंद-राय भारवी नाम का एक ब्राह्मण रहता था। राजा सरभ का मंत्री, आध्यात्मिक परामर्शदाता तथा राजकवि होने के अतिरिक्त वह सर्वतो-मुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था तथा आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र तथा नाटक लिखने में भी अति प्रवीण था।

इसने आयुर्वेदिक चिकित्साशास्त्र की पारिभाषिकी तथा सिद्धांतों पर आधारित जीवानन्द (आत्मा की आनन्दमय स्थिति) नामक आठ अंक के एक नाटक की रचना की। इस नाटक में शरीर को नष्ट करने के प्रयास में लगे रोगों की सेना तथा शरीर की सुरक्षा करने वाली शक्तियों के बीच चल रहे घमासान युद्ध का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है।

रोग-साम्राज्य में पदों पर नियुक्त विभिन्न पात्र इस प्रकार हैं: राजा—क्षय, सेनापति—पीलिया, उत्सवाधिपति—गलगण्ड, विश्वस्त वक्ता—कुष्ठ और पागलपन, साहस-प्रतीक—फोड़े, नासूर अर्श तथा मूत्र रोग; शत्रु सेना प्रहारक—अतिसार, शत्रु की रक्षक सेना का ध्वसंक—वर्द्धित प्लीहा अन्य पदों; पर आसीन—आंखों के ६४ रोग, नाक—कान के १८ रोग, मुंह के ७४ रोग, हृदय के ५ रोग तथा बहुत से अन्य अविशिष्ट रोग।

शरीर के साम्राज्य में विभिन्न पात्रों के पद, उनकी विशेषताएं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथा उनके निर्धारित कर्तव्य इस प्रकार हैं:— राजा – आत्मा (जीव), जो स्वयं पूर्णतया निष्क्रिय हैं। प्रधान मंत्री—बुद्धि, जो एक चतुर ब्राह्मण की भांति राजा के ध्यान को सांसारिक मामलों की ओर निदेशित करता है। प्रथम मंत्री के स्टाफ़ के कर्मचारी तीन दोष--वात, पित्त और कफ मानस (मस्तिष्क)। ये चारों मिलकर शरीर की पूंजी को नियंत्रित करते हैं। पित्त और कफ पंगु होते हैं अतः विभिन्न कार्यों के लिए उन्हें वायु ले जाती है। मानस (मस्तिष्क) राजा का एक चंचल कल्याण अधिकारी है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत प्रलोभनों के समक्ष शीघ्र ही आत्मसर्म्पण कर देता है और इस प्रकार अवांछित आहार अथवा औषधियां ग्रहण कर ली जाती हैं जिसके फलस्वरूप तीनों दोषों के कोमल संतुलन तथा साम्य में सरलता से अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। द्वितीय मंत्री—आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता, जो राजा का ध्यान लोकोत्तर सत्य की ओर दिलाता है और इस प्रकार सांसारिक मामलों के प्रति पूरी लापरवाही हो जाती है। यदा-कदा ये दोनों मंत्री राजा का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी के रूप में भी कार्य करते हैं। पुलिस प्रमुख—विवेक। बाहरी सहायता—मृत्युंजय भगवान शिव की भक्ति द्वारा उपलब्ध होती है। भगवान शिव शरीर के साम्राज्य को गन्धक और पारे जैसी शक्तिशाली औषधियों की ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा योग की पूर्णप्रज्ञा प्रकट करते हैं।

द्वन्द्व-युद्ध का प्रारम्भ

राजा क्षय अपनी सेनाओं को शत्रु के साम्राज्य-शरीर पर घेरा डालने का आदेश देता है। दूसरी ओर, बुद्धि राजा जीव को हृदय और मस्तिष्क में प्रविष्ट हो अंतर्गत गढ़ी में पहुंचकर वहाँ की एकान्तवासिनी देवी भक्ति के साथ मिलकर भगवान शिव की आराधना करने का परामर्श देता है। राजा जीव परामर्श का अनुसरण करता है और भगवान शिव राजा को गंधक और पारे जैसी शक्तिशाली औषधियों की ऊर्जा प्रदान करते हैं।

रोग-साम्राज्य का एक गुप्तचर संन्यासी के छद्मवेश में शरीर की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राजधानी में प्रवेश करता है तथा सुरक्षा हेतु किये गये सभी अकाट्य उपायों का पता लगाकर अपने राजा को वह इसकी सूचना देता है। राजा क्षय जब यह देखता है कि उसकी सेनाएं इस मोर्चाबन्दी को तोड़ मानव-शरीर में प्रविष्ट होने में असमर्थ हैं, तो वह लोभ, लिप्सा, क्रोध, दम्भ, ईर्ष्या और मद नामक छः कुप्रवृत्तियों को शत्रु के राज्य में चोरी-छिपे प्रवेश करने की आज्ञा देता है। वहां ये कुप्रवृत्तियां सभी प्रकार के विघ्न उत्पन्न करती हैं तथा राजा और उसके प्रथम मंत्री के मध्य मनमुटाव पैदा करने का प्रयास करती हैं, क्योंकि अब केवल इसी युक्ति द्वारा क्षय को विजय प्राप्त करने की आशा रहती है। परन्तु राजा जीव की पुलिस का प्रमुख विवेक इनका चातुर्यपूर्ण वेश होने पर भी इन्हें अपने सिपाहियों द्वारा पकड़वा लेता है। फिर भी वह इन विकारों में से ईर्ष्या को मुक्त कर देता है ताकि वह जाकर क्षय को सूचित कर सके कि उसकी चाल बेकार हो गयी है।

राजा क्षय एक अन्य चाल का सहारा लेता है। वह 'अहितकर आहार' को राजा जीव को पथभ्रष्ट कर अनियमित तथा अत्यधिक आहार करने के उद्देश्य से भेजता है ताकि राजा निर्बल हो जाये। इसी दौरान, राजा जीव देवी भक्ति के इतने निकट सम्पर्क में आ जाता है कि वह अपने प्रथम मंत्री—बुद्धि द्वारा दिये गये परामर्श की ओर भी ध्यान नहीं देता तथा अपने साम्राज्य के सामने खड़े संकटों के प्रति भी राजा असावधान् रहने लगता है। इस समय वह अपने द्वितीय मंत्री—आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता की बात अधिक सुनता है जो राजा जीव के ध्यान को इस केशरीर के साम्राज्य तथा इसे सभी ओर से घेरने वाले भयानक संकटों की ओर से हटा देता है।

ऐसा स्वर्ण अवसर पाते ही राजा क्षय शरीर पर अपनी विनाशकारी सेना को छूट दे देता है। नाना प्रकार के रोग सुरक्षात्मक दीवारों और मोर्चाबन्दी को छेद कर शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं तथा स्वयं राजा जीव को जीतने के उद्देश्य से अग्रसर होते हैं, तभी राजा को अन्ततः अपनी दुर्गति और चूक का आभास होता है। वह तुरन्त अपने प्रथम मंत्री—बुद्धि को शीघ्रता से बुला भेजता है और उससे सहायता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की प्रार्थना करता है। बुद्धि युद्ध के मैदान में दैवी औषधियों को उतारती है। एक-एक मनुष्य के शरीर में चल रहे इस द्वन्द्व-युद्ध में ये औषधियाँ रोगों की सभी शक्तियों को जीत कर उनका सर्वनाश कर डालती हैं।

राजा क्षय इस हानि पर भी अपनी हार स्वीकार नहीं करता। अन्तिम हथियार के रूप में वह असाध्य रोगों के समूह को एक आकस्मिक आक्रमण में शरीर पर फेंक मारता है। प्रथम मंत्री—बुद्धि इस संभावित घटना का पहले से ही पूर्वानुमान कर लेता है। तथा तुरन्त ही राजा जीव को उसी दैवी भक्ति की शरण में जाने का परामर्श देता है, जिसके अधिक प्रभाव ने राजा को प्रथम मंत्री से अस्थायी तौर पर विमुख कर दिया था। इस भक्तिपूर्ण मनन के दौरान, भगवान शिव राजा के सम्मुख प्रकट होते हैं तथा उसे योग की पूर्ण जानकारी—परमात्मा है और आत्मा के सार का सच्चा ज्ञान प्रदान करते हैं। इस ज्ञान द्वारा राजा जीव सभी कष्टों से अपनी रक्षा करता है तथा स्वयं को सभी सांसारिक चिन्ताओं से ऊपर उठा लेता है।

स्वास्थ्य सर्वोपरि

नाटक के अंतिम अंक में "भगवान शिव राजा जीव को संबोधित करते हुए कहते हैं, सर्वोच्च ज्ञान-प्राप्ति के प्रयास मत छोड़ो, इस के द्वारा ही पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति प्राप्त होती है फिर भी इसके साथ-साथ पूर्ण सांसारिक जीवन-संबंधी ज्ञान का सम्मान कर उसका अनुसरण भी करते रहो। प्रत्येक क्षेत्र अर्थात् सांसारिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों की ओर यथोचित ध्यान देने पर सांसारिक सुखों का पूर्ण आनन्द एवं मोक्ष दोनों ही की प्राप्त हो सकती है। जब तक शरीर-रूपी राज्य का रख-रखाव बना रहता है और दृढ़ता से इसकी रक्षा की जाती है तभी अलौकिक आनन्द के बाहुल्य में सहायता पहुँचाने हेतु योग अपनी आश्चर्यजनक शक्ति का पूर्णरूपेण उपयोग कर सकता है।"

यह नाटक आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र के भिन्न-भिन्न पक्षों अथवा दोषों का त्रिधातु सिद्धांत, आहारविज्ञान का मूल्य एवं स्थान, विभिन्न

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रोगों के उपचार में औषधियों की आरोग्यहर शक्ति, यौगिक ज्ञान की प्रकृति तथा अन्य बहुत से विषयों का चित्रण करता है। यह दर्शकों को आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा रोगों के उपचार में विश्वास रखने का आदेश भी देता है। स्वास्थ्य, शक्ति एवं दीर्घायु स्वयं में एक उच्चतर उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मात्र है और वह उद्देश्य है मनुष्य स्वभाव की सभी आवश्यकताओं एवं बन्धनों से छुटकारा पाकर दैवी मोक्ष प्राप्त करना। नाटक 'जीवानन्द' हिन्दू चिकित्सा विवेक द्वारा प्रस्तुत इस सर्वोच्च पाठ का अत्यन्त स्पष्ट रूप से चित्रण करता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन भारतीय पशु-चिकित्सा-विज्ञान के जनक:

शलिहोत्र

प्राचीन भारत में पशुओं की चिकित्सीय देखभाल आज की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उन्नत स्थिति में थी। पशुओं की अधिक देखभाल इसलिए की जाती थी, क्योंकि पशु युद्ध एवं शांति दोनों ही काल में व्यक्ति, समाज तथा राजा के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते थे। गृह-जीवन में दूध के लिये तथा खेतों में कृषि के लिए मनुष्य पशुओं पर ही निर्भर थे। युद्ध के मैदानों में बहुत बार विजय हाथी तथा घोड़ों की उत्तम शक्ति पर आश्रित होती थी। इस कारण चिकित्सकों के अतिरिक्त राजा और राजकुमार भी यदा-कदा पशुचिकित्सा विज्ञान में पारंगत होते थे। राजा नल का उपनाम 'अश्वविद्' था जिसका अर्थ है जो व्यक्ति घोड़ों के विज्ञान तथा देखभाल में प्रवीण हो। माद्री के जुड़वां पुत्र नकुल और सहदेव को गुरु द्रोण ने घोड़ों और पशुओं के उपचार, प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध की कला सिखाई थी। नकुल को अश्व-चिकित्सक कार्य का दायित्व सौंपा गया है जो आज भी विद्यमान है। अयोध्या के राजा दशरथ के समकालीन एक राजा रोमपद के बारे में यह बताया जाता है कि उन्होंने मुनि पालकप्य से गज-आयुर्वेद अथवा हस्ति-आयुर्वेद (जिसका अर्थ है हाथियों का उपचार) की शिक्षा प्राप्त की थी। उन दिनों मनुष्यों का उपचार करने वाले चिकित्सक को पशुओं की देखभाल में भी प्रशिक्षित किया जाता था। 'चरक', 'सुश्रुत' तथा 'हारीत संहिता' के समान आयुर्वेदिक ग्रन्थों में रोगी तथा सामान्य स्वस्थ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पशुओं की देखभाल के बारे में भी अध्याय अथवा संदर्भ मिलते हैं। किन्तु ऐसे भी चिकित्सक थे जो पशुओं की देखभाल अथवा किसी एक ही वर्ग के पशुओं की देखभाल में विशेषज्ञ होते थे। इन चिकित्सकों में महानतम शालिहोत्र थे, जिन्हें प्राचीन भारत में पशुचिकित्सा विज्ञान का जनक माना जाता है। शालिहोत्र एक ब्राह्मण मुनि, हयपोष के पुत्र बताये जाते हैं। वह श्रावस्ती (उत्तर-प्रदेश में गोंडा और बहराइच ज़िलों की सीमा पर आधुनिक सहेत-महेत) में रहते थे। किन्तु कुछ अन्य स्रोतों के अनुसार शालिहोत्र कन्धार के निकट एक स्थान सल्तूर में रहते थे। शालिहोत्र और अग्निवेश एक ही गुरु के शिष्य बताये जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि सुश्रुत शालिहोत्र ई० पू० आठवीं शताब्दी के आसपास जीवित थे।

शालिहोत्र घोड़ों के उपचार तथा अन्य पथ्यों के विशेषज्ञ थे। उन्होंने एक ग्रन्थ 'हय आयुर्वेद' की रचना की जिसे 'तुरंगम शास्त्र' तथा 'शालिहोत्र संहिता' भी कहते हैं। यह कृति अश्वों की देखभाल तथा उपचार से सम्बन्धित है। भारतीय स्मृति के अनुसार हय-आयुर्वेद में निहित ज्ञान भी स्वयं समस्त ज्ञान के स्रोत ब्रह्मा द्वारा शालिहोत्र को प्रकट किया गया था। अश्वप्रशंसा तथा अश्वलक्षण शास्त्र नामक दो अन्य 'कृतियाँ' भी शालिहोत्र द्वारा रचित बताई जाती हैं।

हय-आयुर्वेद

यह एक वृहद् ग्रंथ है। इसमें 1200 श्लोक हैं। इस पुस्तक का एक अंश ही इस समय प्राप्य है। यह आठ भागों में विभाजित है और प्रत्येक भाग अनिवार्यतः विषय के एक पक्ष का विवेचन करता है। पहले भाग में घोड़ों के स्वभाव, अन्तर्निष्ठ गुण, नसल, रग, घोड़ों की चार जातियों विभिन्न जातियों के चिन्ह, उनकी उम्र पता लगाने, के विभिन्न मापों, घोड़ों के शरीर को सुधारने के उपायों, बेलगाम घोड़ों के नियंत्रण, राजाओं के लिए उपयुक्त घोड़ों एवं घोड़ो को खरीदने की रीति का वर्णन है। दूसरे भाग में, निरूपण की रीतियों का उल्लेख है। इसमें घोड़ों की विभिन्न बीमारियों का भी वर्णन है जैसे लंगड़ापन, आंख के रोग, ज्वर, अन्त्रशूल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

श्रौर उसके प्रभेद, श्रतिसार, पेचिश मलाशय का भ्रंश हिचकी, दमा-खांसी, नाक बहना, पीलिया, मूर्च्छा, श्रंत्र में कीड़े होना श्रन्तरंगों को रक्तस्राव, टांगों परसूजन श्राना, सर्पदंश के लक्षण श्रौर उपचार, विषयुक्त वाणों द्वारा उत्पन्न विषाक्त होने तथा घाव होने का विवेचन है। तीसरे भाग में भ्रूण के निर्माण, गर्भाशय में भ्रूण के विभिन्न श्रंगों का विकास, गर्भ की कुस्थिति के कारण, कठिन प्रसव में की व्यवस्था, प्रजनन श्रंगों के भिन्न-भिन्न रोग तथा मूत्र-श्रवरोध का वर्णन है। चौथे भाग में घोड़े के मुख श्रौर जीभ के उन रोगों के उपचार का विवेचन है जिनके कारण घोड़ा कुछ भी नहीं खा पाता। इसी भाग में बादी श्रौर पेचिश का उपचार भी दिया गया है। पांचवाँ भाग घोड़ों पर विभिन्न नक्षत्रों के प्रभाव से प्रारम्भ होता है श्रौर तत्पश्चात उसमें ज्वर, त्वचा रोग श्रौर श्रस्थिभंग का विवेचन है। छठे भाग में भी घोड़ों पर नव ग्रहों के दुष्प्रभाव तथा इससे घोड़ों को छुटकारा दिलाने का विवेचन है। सातवें भाग में उपचार की भिन्न-भिन्न पेचीदगियों का वर्णन है। इसमें दूध, शराब, नमक जैसे श्राहार के कुछ पदार्थों द्वारा उत्पन्न रोगों तथा एनीमा की नली से उत्पन्न उलझनों का विवेचन है। श्राठवें श्रौर श्रंतिम भाग में 'रहस्यात्मक प्रसंग' दिये गये हैं। इसनें घोड़े के शरीर पर भिन्न-भिन्न रेखाश्रों श्रौर उनके महत्त्व, जीवन की श्रवधि, नक्षत्रों के दुष्प्रभाव द्वारा उत्पन्न मृत्यु के लक्षण तथा घोड़ों को देने के लिये विविध दवाश्रों की तैयारी का भी वर्णन है। इन दवाश्रों में हर्र, श्रदरक, गुग्गल, सरसों, लाख, त्रिफला, राल तथा जीवन को दीर्घायु करने वाली श्रौषधियों सम्मिलित हैं। इसमें घोड़ों के प्रशिक्षण, उनके द्वारा ले जाने वाले श्रधिकतम भार, रथ में घोड़े जोतने की विधियाँ तथा श्रस्तबलों के प्रवन्ध का विवेचन है।

शालिहोत्र की ख्याति

इस विषय पर श्रधुनातन पुस्तकें भी शालिहोत्र के हय श्रायुर्वेद की तुलना में ग्रन्थ में वर्णित प्रसंगों तथा विषयवस्तु के सम्बन्ध में कहीं नहीं ठहर पाती। श्राधुनिक पुस्तकें इस ग्रन्थ से केवल एक ही दृष्टि से

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आगे हैं कि इसमें गत १५० वर्षों में की गई शोधों का समावेश है। प्राचीन काल में हय आयुर्वेद को इस विषय की प्रामाणिक पुस्तक स्वीकार किया जाता था। इसके कुछ अध्यायों को अग्नि पुराण में उद्धृत किया बताते हैं। 'मत्स्य' और 'गरुड़ पुराण' में भी इस ग्रन्थ का संदर्भ मिलता है। बाद में शालिहोत्र के इस ग्रन्थ का फारसी, अरबी तिब्बती तथा अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया। शालिहोत्र तथा उनके ग्रंथों की ख्याति इतनी अधिक हो गई कि कुछ स्थानों पर तो अब भी घोड़ों के चिकित्सक को 'सलोत्री' कहा जाता है। कुछ परवर्ती लेखकों ने पशु-चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी अपनी कृतियों का नाम शालिहोत्र के नाम पर रखा तथा कुछ अन्य लेखकों ने अपनी कृतियाँ शालिहोत्र संहिता के आधार पर लिखी हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वैदिक युग की वेदियों का ज्यामितिविद् :

बौधायन

वैदिक युग के भारतवासियों के लिए विविध प्रकार के यज्ञ उनके धर्म का एक प्रमुख भाग था। यह यज्ञ एक निश्चित पूर्व परिकल्पित समय पर तथा विशिष्ट आकार एवं आकृति की वेदियों पर सम्पन्न किया जाता था। समय की गणना के लिए खगोलशास्त्र के ज्ञानकी आवश्यकता होती थी तथा वेदियों की दूरियाँ, क्षेत्रफल और आयतन आदि को नापने के लिए ज्यामिति के ज्ञान की आवश्यकता थी। ईंटों से चिनी हुई वेदियाँ बनाने की प्रथा अपने में अद्वितीय थी। प्रारम्भिक वेदियाँ साधारण होती थीं और बाद में वेदियों की रचना जटिल होती गई। इन वेदियों के क्षेत्रफल तथा इनमें लगी ईंटों की संख्या सामान्यत: एक ही रहती थी यद्यपि इनकी आकृति और ईंटों की आकृति वृत, अर्द्धवृत, वर्ग आयात अथवा त्रिभुज के रूप की होती थी। इसके लिये वेदियों के निर्माताओं को विशिष्ट व्यावहारिक ज्यामितीय सिद्धांतों को समझने और इनमें व्युत्पत्ति निकालने की जानकारी होना आवश्यक था।

वैदिक युग के यज्ञ

यज्ञ मुख्यत: दो प्रकार के होते थे—एक नित्य किए जाने वाले यज्ञ तथा दूसरे वे यज्ञ जो एक विशेष उद्देश्य (काम्य) की प्राप्ति हेतु किये जाते थे। प्रत्येक यज्ञ के लिए एक विशिष्ट प्रकार की वेदी वांछित

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

थी। दैनिक यज्ञ के लिये निम्नांकित तीन प्राथमिक वेदियाँ होती थीं— गार्हपत्य, आह्वनीय तथा दक्षिण। विशिष्ट यज्ञ की वेदियों के भिन्न-भिन्न नाम थे तथा इनकी आकृतियाँ 'झुके पंखों तथा बाहर निकली हुई पूँछ वाले बाज' बगुला, अलज (एक पक्षी), कछुआ, त्रिभुज, वृत समान्तर असम चतुर्भुज, रथचक्र अथवा एक समाधिक्षेत्र की आकृतियों की भांति होती थीं।

इन वेदियों का निर्माण इस कला में पारंगत व्यक्तियों द्वारा किया जाता था तथा इसकी कला एवं विज्ञान की जानकारी 'शुल्वसूत्र' नामक धर्मग्रंथों में समाविष्ट है। 'शुल्व' शब्द का अर्थ है 'मापन' तथा 'सूत्र' का अर्थ है कहावत अथवा संक्षिप्त नियम ; जो वस्तुतः इन ग्रन्थों की शैली का परिचायक है— वेदियों के निर्माण हेतु नियमावली— शुल्व सूत्रों का साहित्य—उन श्रौत सूत्रों का उपांग है, जिनमें नाना प्रकार के वैदिक उत्सवों का वर्णन है। श्रौत सूत्र स्वयं ही वेद-परिवार के सदस्य छः वेदांगों में से एक वेदांग कल्पसूत्र का एक उपांग हैं। प्राचीन काल में प्रत्येक वेद के कई-कई शुल्व थे किन्तु उनमें से केवल सात ही शेष हैं और वे सात शुल्व सूत्र ही हमें ज्ञात हैं। सामान्यतया इनका नामकरण इनके लेखकों के नाम पर किया गया है—बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन, मानव, मैत्रायण, वराह तथा बाथुल।

बौधायन शुल्व सूत्र

यह सब सूत्रों में प्राचीनतम एवं वृहदतम सूत्र है। यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है। इसकी रचना बौधायन द्वारा ई० पू० 500-300 के लगभग की गयी थी। बौधायन के जीवन के बारे में अन्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। ये सूत्र तीन भागों में विभाजित हैं। पहले भाग में 116 सूत्र हैं, इसमें विभिन्न प्रकार की वेदियों के निर्माण हेतु आवश्यक प्रमुख ज्यामितीय प्रमेयों का वर्णन है तथा संक्षेप में उनके तुलनात्मक आकार और आकृतियों का विवेचन भी है। दूसरे भाग मे 83 सूत्र हैं और इसमें तीन प्राथमिक वेदियों का वर्णन दिया गया है। तीसरे भाग में 363 सूत्र हैं तथा जटिल प्रकृति की विशिष्ट वेदियों की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विविध रचनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है।

1—ज्यामितीय रचनायें

वौधायन में ज्यामितीय आकृतियों की रचना, क्षेत्रफल के संयोजन एवं रूपान्तरण, क्षेत्रफलों के आयतन का मापन, वृत का वर्ग बनाने तथा वर्ग का वृत बनाने, भिन्न-भिन्न क्षेत्रफल वाली एक-सी आकृतियाँ बनाने की रीतियों का तथा इनसे संबंधित विविध समस्याओं का वर्णन किया है। उदाहरण के लिये—विशेष रूप से वौधायन द्वारा प्रयुक्त तकनीक को दर्शाने के लिये उनकी कुछ रीतियों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

वौधायन ने दी हुई भुजाओं के आयत दिये हुए परिमापों से समद्विबाहु, समलम्ब तथा एक ही दी हुई भुजा से वर्ग की रचना की रीतियों का वर्णन किया है। अन्तिम रचना का वर्णन उन्होंने इस प्रकार दिया है—"यदि आप एक वर्ग बनाना चाहते हैं तो इसकी वाँछित भुजा के बराबर लम्बी एक डोरी (रज्जु) लीजिये, इसके दोनों सिरों पर एक-एक गाँठ लगाइये तथा इसके बीचों-बीच एक निशान लगा दिजये, तव वाँछित लम्बाई एक रेखा पूर्व से पश्चिम की ओर खींच कर इसके मध्य विन्दु पर एक डण्डा खड़ा कर दीजिये। इस डण्डे में डोरी की दोनों गाँठों को अटका कर एक वृत बनाइये। इसी प्रकार एक अन्य वृत पश्चिमी सिरे के डण्डे के चारों ओर खींचिये। इन वृतों के प्रतिच्छेदी विंदुओं को मिलाने पर दूसरा व्यास (उत्तर से दक्षिण की ओर) प्राप्त हो जायेगा। इस व्यास के दोनों सिरों पर दो डण्डे खड़े कीजिये। अब पूर्वी डण्डे में दोनों गाँठों को अटका कर एक वृत के चिन्ह लगा दीजिये। इसी प्रकार दक्षिणी-पश्चिमी और उत्तरी डण्डा के चारों ओर वृत खींचिये। इन वृतों के प्रतिच्छेदन के बाहरी बिन्दुओं के मिलाने पर वांछित वर्ग वन जायेगा।"

वर्ग से वर्ग

एक दिये हुए वर्ग का 'एन' गुने के तुल्य वर्ग खींचने, किसी दिये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हुए वर्ग के एक ने अंश के तुल्य एक वर्ग खींचने तथा दो भिन्न-भिन्न वर्गों के योग के तुल्य एक वर्ग तथा दो भिन्न-भिन्न वर्गों के अन्तर के तुल्य एक वर्ग खींचने की विधियों का वर्णन भी वौधायन ने किया है। अन्तिम निर्मेय को खींचने की विधि का उन्होंने निम्न प्रकार से वर्णन किया है :—

"एक वर्ग से दूसरा वर्ग घटाने के लिये बड़े वर्ग से घटाये जाने वाले वर्ग की एक भुजा के बराबर एक (आयताकार) खंड काटो। फिर इस खण्ड की एक बड़ी भुजा को दूसरी बड़ी भुजा तक विकर्णतः खींचो। जहाँ यह दूसरी भुजा पर गिरे, उस भाग को काट दो। इस कटे हुए भाग द्वारा ही घटाने की क्रिया पूर्ण हो जाती है।"

आयत से समचतुर्भुज

वौधायन ने एक प्रकार की ज्यामितीय आकृति को दूसरी आकृति में रूपान्तरण करने की विधियाँ भी बताई हैं। उदाहरण के लिये आयत का वर्ग में, वर्ग का आयत में, किसी वर्ग का दी हुई भुजाओं वाले आयत में, किसी वर्ग अथवा आयत का एक दिये गये पार्श्व वाले समद्विबाहु असमचतुर्भुज में अथवा किसी वर्ग या आयत का एक समचतुर्भुज में रूपान्तरण करने की विधियाँ। अन्तिम निर्मेय की विधि का निम्न वर्णन दिया गया है :—

"यदि आप किसी वर्ग अथवा आयत का एक समचतुर्भुज में रूपांतरण करना चाहते हैं तो एक ऐसा आयत वनाइये जिसका क्षेत्रफल उस आकृति का दुगुना हो जिसका रूपान्तरण करना हो। इसकी पूर्वी भुजा के मध्य में एक डण्डा खड़ा कर दीजिये। इसमें दो गाँठें (दो रज्जुओं की) अटका कर रज्जुओं को (आयत की) उत्तरी और दक्षिणी भुजाओं के मध्य विन्दु तक ले जाइये। इन रज्जुओं से बाहर वचे भागो को काट दीजिये। इसी से दूसरे त्रिभुज की रचना भी स्पष्ट हो जाती है।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्ग का वृत में रूपान्तरण

बौधायन ने वर्ग का वृत में रूपान्तरण करने के लिये निम्न विधि बताई है ।

"इसके आधे विकर्ण को केन्द्र के इर्द-गिर्द पूर्व पश्चिम रेखा की ओर खींचो, फिर वर्ग से बाहर निकली हुई रेखा के एक-तिहाई को लेकर वृत खींच दो ।" और एक वृत को वर्ग में रूपान्तरण करने के लिये :

"इसके व्यास को आठ भागों में विभाजित करो फिर एक भाग के 29 भाग कर लो और इनमें से 28 भागों को छोड़ दो तथा (पूर्ववर्ती उपविभाजन के) छठे भाग में से (अन्तिम के) आठवें भाग को कम करके छोड़ दो ।

उक्त रूपान्तरणों को सीखने की आवश्यकता तीन प्राथमिक वेदियों की रचना के कारण पड़ी । इन तीन वेदियों – गार्हपत्य, आहव-नीय तथा दक्षिण—का क्षेत्रफल तो समान होता था अर्थात् 1 वर्ग व्यास (96 अंगुल चौड़ा), किन्तु इनकी आकृतियाँ अलग—प्रथम वेदी के वृत्ताकार दूसरी वर्गाकार और अन्तिम अर्ध वृत्ताकार होती थी ।

आकृति में कोई भी परिवर्तन किये बिना क्षेत्रफल में एक निश्चित परिमाण का परिवर्तन करने के लिये, उदाहरणस्वरूप बाज़ की आकृति के समान के $7\frac{1}{2}$ वर्ग पुरुस क्षेत्रफल में "एम" वर्ग पुरुस का अन्तर करने के लिये बौधायन का हल इस प्रकार है :—

"वेदी के मूल आकार तथा नवीन आकार के अन्तर को 14 समान भागों में विभाजित करो । दी हुई आकृति के प्रत्येक (संघटक) भाग (इकाई) में उन दो भागों को जोड़ दो । फिर (दी हुई आकृति की भांति ही) इन (परिवर्तित) इकाइयों के साढ़े सात भाग लेकर आकृति की रचना करो ।"

2—ज्यामितीय सिद्धांत

ऐसा प्रकट होता है कि बौधायन ज्यामिति के कुछ विशेष सिद्धांतों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को समझते थे अन्यथा वह भिन्न-भिन्न आकृतियाँ तथा विधियों का परिकलन नहीं कर पाते। सम्भवतया पुस्तक के अति संक्षिप्त होने के कारण, इसमें सिद्धांतों का उल्लेख नहीं हो पाया। फिर भी यह स्पष्ट है कि वौधायन निम्न सिद्धांतों को अच्छी तरह समझते होंगे यद्यपि उन्होंने यूकलिद की ज्यामिति की भांति सिद्धांतों का स्पष्ट निरूपण और प्रमाण नहीं दिये हैं।

(1) एक सरल रेखा को कितने ही समान भागों में विभाजित किया जा सकता है। (2) व्यास खींचकर वृत्त को भी कितने ही भागों में विभाजित किया जा सकता है। (3) आयत का प्रत्येक विकर्ण इसका समद्विभाजन करता है। (4) आयत के त्रिकर्ण एक-दूसरे का समद्विभाजन करते हैं तथा आयत को चार भागों में विभाजित भी करते हैं जिनमें से परस्पर सम्मुख भाग सभी प्रकार समान होते हैं (5) एक समचतुर्भुज के विकर्ण परस्पर समकोण पर समद्विभाजित करते हैं। (6) त्रिभुज की भुजा को समान भागों में विभाजित करने के पश्चात इन्हें दो भुजाओं के विभाजन विन्दुओं से मिलाकर किसी त्रिभुज को कितने ही समान और सर्वांगसम भागों में विभाजित किया जा सकता है। (7) समद्विबाहु त्रिभुज के शीर्ष को सम्मुख भुजा के मध्यविंदु से मिलाने पर यह त्रिभुज दो बराबर भागों में विभाजित हो जाता है। (8) वर्ग की किसी भुजा के सिरों को सामने वाली भुजा के मध्यविंदुसे मिलाने पर बना हुआ त्रिभुज वर्ग के आधे के बराबर होता है। (9) वर्ग की भुजाओं के मध्यविंदुओं को मिलाने वाली रेखाओं से बना चतुर्भुज भी एक वर्ग ही होता है जिसका क्षेत्रफल मूल वर्ग का आधा होता है। (10) एक आयत की भुजाओं के मध्य विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा से एक समचतुर्भुज बनता है जिसका क्षेत्रफल आयत का आधा होता है। (11) एक ही आधार तथा समानान्तर रेखाओं के मध्य बना हुआ एक समानान्तर चतुर्भुज तथा आयत एक-दूसरे के बराबर होते हैं। (12) किसी वृक्ष के भीतर बनाये

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जाने वाला बृहत्तम वर्ग वह होता है जिसके चारों कोने वृक्ष की परिधि पर स्थित हों।

विकर्ण के वर्ग का प्रमेय (पाइथेगोरस प्रमेय)

वौधायन ने प्रतिपादित किया है कि 'एक आयत का विकर्ण उतनी ही (क्षेत्रफल) रचना करता है जितना इसकी लम्बाई और चौड़ाई अलग-अलग रचना करती है' अर्थात् आयत के विकर्ण पर बने वर्ग का क्षेत्रफल इसकी दो भुजाओं पर बने वर्गों के योगफल के बराबर होता है। भिन्न शब्दों में कथित इसी प्रमेय का श्रेय पाइथेगोरस (ई० पू 540) को दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं लगता कि वौधायन और भारत में उनके पूर्ववर्ती व्यक्ति भी इस प्रमेय के सामान्य स्वभाव को पूर्णतया स्वीकार करते थे तथा वेदियों की रचना में इसमें सत्य का व्यापक एवं विस्तृत रूप से उपयोग करते थे। विख्यात जर्मन प्राच्यविद्, थाईवो ने इस सम्वन्ध में यह लिखा है: "सूत्रकार ऐसा कोई संकेत नहीं देते जिसमें यह जानकारी मिलती हो कि उन्होंने विकर्ण के वर्ग-सम्वन्धी साध्य का किस प्रकार पता लगाया किन्तु हम यह मानते हैं कि उन्होंने भी इस तथ्य का निरीक्षण कर लिया था कि विकर्ण का वर्ग भी अपने स्वयं के विकर्णों द्वारा चार त्रिभुजों में विभाजित किया जाता है। साथ ही यह तथ्य वर्गों अथवा आयताकार समवाहु त्रिभुजों से सम्वन्धित पाइथेगोरस के साध्य की तात्कालिक और विश्वासोत्पादक प्रमाण भी प्रस्तुत करता है।

वौधायन पूर्ववर्ती अन्य व्यक्ति

उपर्युक्त चयन वौधायन के शुल्व-सूत्र में उल्लेखित ज्यामितीय विधियों का किसी भी रूप में पूर्ण वर्णन नहीं है, फिर भी यह हमें तत्कालीन ज्यामिति के ज्ञान की एक झलक तो देता ही है। बौधायन ने स्वयं ही कई स्थानों पर यह स्पष्ट कर दिया है कि इन सब विधियों का उन्होंने सर्वप्रथम प्रतिपादन नहीं किया। उन्होंने पूर्ववर्ती ग्रन्थों के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रति आभार भी प्रकट किया है। उन्होंने उन कृतियों – विशेष रूप से एक अति प्राचीन रचना तैत्तिरीय संहिता की प्रामाणिकता को स्वीकार किया है।

बौधायन के बाद भी अन्य व्यक्तियों ने इस क्षेत्र में और अधिक योगदान किया, जो परवर्ती शुल्व सूत्रों में स्पष्ट रूप से दर्शनीय है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नक्षत्रों का गणनाकार :

गर्ग

तारों से आच्छादित आकाश युगयुगों से मनुष्य को आकर्षित करता रहा है। शुरू में तो मनुष्य आकाश की ओर विस्मय, श्रद्धा एवं कुतूहलपूर्वक निहारता था। धीरे-धीरे उसे यह स्पष्ट होता गया कि रात्रि में आकाश की इन चमकती वस्तुओं में कुछ की गति नियमित होती है जबकि कुछ अन्य की नहीं। मनुष्य ने देखा कि रात्रि में चन्द्रमा तथा दिन के समय सूर्य आकाश में एक विशिष्ट निर्धारित पथ पर चलते हैं। आकाशीय पथ में अथवा उसके निकट गतिहीन तारों के कुछ समूहों को भी मनुष्य ने देखा। इस आकाशीय पथ को गतिमय वस्तुओं की स्थिति बताने के लिए उपयोग किया जाता था, उदाहरण-स्वरूप यह कहा जाता था कि उदय होने से पूर्व सूर्य किसी विशिष्ट समय पर तारों के इस या उस समूह के निकट पहुँच जाता है। वर्षों, दशकों तथा शताब्दियों तक तारों के किसी विशेष समूह के निकट पहुँचने की स्थिति से ही मनुष्य शरद्, ग्रीष्म, वर्षा ऋतु अथवा फसल बोने और काटने के समय का अनुमान लगाता रहा। इन सभी तारों में से सूर्य के भ्रमण तथा नयी यात्रा पर सूर्य के पुनःप्रस्थान से ही वर्ष और वर्ष के दिनों की संख्या का आभास होता था।

दीर्घवृत्ताकार आकाशीय पथ में और उसके निकट स्थित इन तारा-समूहों को भारतवासी 'नक्षत्र' कहते थे और प्रत्येक नक्षत्र का एक विशिष्ट नाम होता था। इन नक्षत्रों को दिव्य समझा जाता था, इनको पूजा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

की जाती थी तथा इनके प्रति धार्मिक अनुष्ठान भी किये जाते थे।

वेदों के अनुसार गर्ग ने सर्वप्रथम इन सब नक्षत्रों की गणना की। अथर्ववेद के निम्न श्लोक में जो गर्ग के नाम से सम्बद्ध हैं, इन समूहों के नाम की सूची दी गई है।

"आकाश मे देदीप्यमान, सदा गतिशील तथा भुवन में विचरण करने वाले इन अठाईस आश्चर्यजनक तारा-समूहों की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने हेतु मैं आकाश की गीतों से पूजा करता हूँ।"

"कृत्तिका तथा रोहिणी का मैं आसानी से आवाहन कर सकूँ, मृगशिरा श्रेष्ठ हो (तथा) आर्द्रा स्वास्थ्यकर हो, दोनों पुनर्वसु सुखकर हों, पुष्य (मुझे) सुख, आश्लेषा प्रकाश तथा मघा प्रगति प्रदान करें।"

"मेरे लिए पूर्वा फाल्गुनी एवं हस्त शुभ, चित्रा हितकर तथा स्वाती कृपालु हों, दोनों विशाखा अनुग्रहशील हों, अनुराधा की प्रार्थना सरल हो, ज्येष्ठा श्रेष्ठ तारापुंज तथा मूल अक्षतिग्रस्त हो।"

"पूर्व आषाढ़ मुझे भोजन तथा उत्तराषाढ़ मुझे जलपान प्रदान करें, अभिजित शुभ हो, श्रवण (रथ)', धनिष्ठा धन-धान्य और समृद्धि दे।"

"शतभिषा मुझे महानता प्रदानता करे तथा द्वय भाद्रपद मेरी सुरक्षा करें, रेवती और अश्विनी ऐश्वर्य तथा भरणी मुझे सम्पत्ति प्रदान करें।"

गर्ग का जीवन-काल

गर्ग का जीवन-काल निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। यह कहा जाता है कि उन्होंने भगवान कृष्ण के जन्म के समय विविध तारों की स्थिति का निर्धारण किया था। महाभारत के समय वह अर्जुन के ज्योतिषी थे। वह तारों के प्रेक्षण द्वारा समय की गणना भली-भाँति कर सकते थे। 'विष्णु पुराण' में एक पौराणिक गाथा है जिससे यह पता चलता है कि गर्ग ने ब्रह्मांडीय सर्प शेष भगवान को प्रसन्न कर उनसे तारा-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में वराह मिहिर ने लिखा है कि मुनि नारद ने तारा-विज्ञान बृहस्पति को व्यक्त किया और तत्पश्चात गर्ग,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाराशर, कश्यप और माया ने अन्य शिष्यों को इस ज्ञान की शिक्षा दी।

गर्ग संहिता

ऐसा कहा जाता है कि ईसवी सन् के प्रारम्भ में संभवतया एक ज्योतिष-ग्रंथ की रचना हुई थी जिसमें गर्ग की शिक्षाओं का समावेश था। वाद के ग्रंथों में इस संहिता के संदर्भ दिये गये हैं। किन्तु यह ग्रन्थ बहुत पहले ही लुप्त हो चुका प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में संभवतया भारत पर यूनानी आक्रमण और तत्पश्चात् किसी शक राजा द्वारा उन यूनानियों पर विजय का उल्लेख है। इस शक राजा को बाद में एक अन्य शक्ति ने पराजित कर दिया था। ये घटनाएँ ई० पू० तीसरी शताब्दी के लगभग हुई थीं। इस ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है, "यवन (यूनानी) 'म्लेच्छ' होते हैं। किन्तु उनमें यह विज्ञान (खगोल-विज्ञान) अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो चुका है अतः उनका मुनियों की भाँति सम्मान किया जाता है। ब्राह्मण की तुलना में ज्योतिषी का अधिक सम्मान किया जाना चाहिए।" उत्तर काल में रची गई वराह-मिहिर की 'वृहत संहिता' गर्ग-संहिता पर आधारित लगती है।

नक्षत्र सताईस अथवा अठाईस

'अथर्ववेद' और 'मैत्रायणीय संहिता' में नक्षत्रों की संख्या 28 बताई है जबकि 'तैत्तिरीय संहिता' और 'सतपथ ब्राह्मण' में 27। इस विसंगति का यद्यपि कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं है, फिर भी यह कहा जाता है कि वीसवें नक्षत्र से तेईसवें नक्षत्र तक एक-दूसरे में वहुत ही अधिक निकटता है और यहीं पर अभिजित स्थित है, जो दीर्घ वृत्त से सबसे अधिक हटा हुआ है, अतः उसे अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा सरलता से छोड़ा जा सका। दीर्घवृत्त को 27 से भाग देने पर प्रत्येक अंश 800 मिनट की सम संख्या के समान प्राप्त होता है जब कि 28 से भाग देने पर 771 3/7 मिनट की बेढंगी और टेढ़ी संख्या प्राप्त होती है। यह भी हो सकता है कि उत्तर काल में गणना में सुविधा की दृष्टि से नक्षत्रों की संख्या 28 से घटा कर 27 कर दी गई हो।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रारंभिक वैदिक युग की नक्षत्रों की सूची कृत्तिका से प्रारम्भ होती है जब कि प्राचीन संस्कृत युग की सूची अश्विनी से। कुछ विद्वानों ने विषुवों के अग्रगमन की घटना को इसका कारण बताया है। इस घटना ने शताब्दियों में यह प्रभाव उत्पन्न कर दिया तथा भारतीय खगोलविदों ने इसे भली-भाँति समझा।

नक्षत्रों का उपयोग

भारतीय खगोल पर यूनानी प्रभाव से पूर्व इन नक्षत्रों का सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति बताने के लिये प्रयोग किया जाता था। यह बात तत्कालीन विभिन्न ग्रन्थों से प्रमाणित होती है। किन्तु बाद में नक्षत्रों का ज्ञान और उपयोग अनावश्यक हो गया। चीन और चेल्द के प्राचीन खगोल विज्ञान के इतिहास में कहीं न कहीं दीर्घवृत्त में 28 नक्षत्रों का ही वर्णन है। ऋग्वेद में भी कुछ नक्षत्रों का उल्लेख है तथा इसमें शुनःशेप, वामदेव तथा वेण भार्गव के नामों से सम्बद्ध श्लोक भी हैं। ये सभी व्यक्ति तारों के प्रेक्षण विज्ञान से भली-भांति परिचित समझे जाते हैं। यद्यपि यह बात भारत में खगोल की अति प्राचीन परम्पराओं की ओर संकेत करती है, फिर भी स्पष्टतया यह नहीं कहा जा सकता कि इन नक्षत्रों का मूल ज्ञान भारतवासियों को प्राप्त हुआ था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारत के सर्वप्रथम ज्ञात ज्योतिर्विद् :

लगध

हम देख ही चुके हैं कि प्रारम्भिक वैदिक युग में एक व्यक्ति-समूह था जो विविध तारों की स्थिति देखने तथा सामान्यतया विविध धार्मिक अनुष्ठानों के लिये निर्धारित समय की गणना करने में पारंगत था। यद्यपि इस काल का खगोल सम्बन्धित कोई भी नियमित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है किन्तु वेदों की ऋचाओं में उक्त ज्ञान स्पष्ट रूप से अन्त-र्विहित है।

उत्तर वैदिक काल में रचे गये खगोल विज्ञान के कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध जान पड़ते हैं। इनमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ लगध द्वारा रचित ज्योतिष वदांग हैं।

लगध में सर्वप्रथम उस समय उपलब्ध खगोल-सम्बन्धी ज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा और अधिक विकसित भी किया। लगध ई० पू० 900 के लगभग रहे बताये जाते हैं तथा इसी समय उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की, यद्यपि इसका वर्तमान रूप ईसवी सन् के प्रारम्भ के निकट काल का प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में उपलब्ध खगोल-विज्ञान सम्बन्धी सामग्री पर आधारित गणनाओं से संकेत मिलता है कि संभव-तया इसकी रचना काश्मीर घाटी में हुई होगी। लगध के काल में गणित-ज्योतिष के ज्ञान को केवल विविध धार्मिक अनुष्ठानों के समय निर्धारण के लिये ही आवश्यक नहीं समझा जाता था, अपितु वेदों की

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सही व्याख्या के लिये भी आवश्यक समझा जाता था।

ज्योतिष वेदांग

इस समय इसके दो पाठ उपलब्ध हैं—ऋग्वेद ज्योतिष तथा यजुर्वेद ज्योतिष। इनका वर्ण्य-विषय एक-सा ही है, केवल श्लोकों की संख्या में अन्तर है। इसमें उल्लेखित खगोल विज्ञान के सिद्धांत अति संक्षिप्त हैं तथा कहीं-कहीं तो अस्पष्ट भी हो जाते हैं। कांतिवृत्त को आदर्श विभाजन कर 27 नक्षत्रों में बाँटा गया है और प्रत्येक नक्षत्र 13 अंश या ने 20 मिनट का होता है। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें नक्षत्रों के सापेक्षिक सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति की गणना दी हुई है।

पाँच वर्ष के एक चक्र (पाँच संवत्सरों) का एक युग होता है। उस समय, जब ज्योतिष वेदांग की रचना हुई, युग का प्रारम्भ तब हुआ था। "जब सूर्य और चन्द्रमा धनिष्ठा नक्षत्र पर पहुँच गये।" एक युग में 1830 दिन होते थे, एक दिन (वैधानिक अथवा सावन दिवस) सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक गिना जाता था। इसके अनुसार एक वर्ष में 366 दिन होते थे। प्रत्येक महीने का अपना अलग नाम था और प्रत्येक मास 30 दिन का होता था। एक वर्ष में साधारणतया 12 महीने होते थे। एक युग की अवधि में दिनों की पूरी संख्या 1830 पूरी करने के लिए 30 दिन का एक महीना और जोड़ दिया जाता था। वर्ष में दो-दो महीने की छः ऋतुएँ होती थीं। एक ऋतु का समय उतना होता था जितना सूर्य का साढ़े चार नक्षत्र गुजरने में लगता है। ग्रन्थ में ऋतु-विशेष के प्रारम्भिक और अन्तिम दिवस का भी उल्लेख है। (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक) एक दिवस में 30 मुहूर्त होते थे। एक मुहूर्त 22 नादिकाओं के समान था और एक नादिका $10\frac{1}{20}$ कला के बराबर। एक सावन अथवा वैधानिक दिवस 603 कलाओं का होता था।

समय एक घंटिका यंत्र (क्लैपसाइड्रा) द्वारा मापा जाता था। इस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यंत्र में धातु का एक पात्र होता था, जिसमें जल की एक निर्धारित मात्रा आती थी। इसकी तली में एक छिद्र होता था, जब इस पात्र को जल से भरी एक नली पर तैराया जाता था, तब जल, इसे भरने के लिए इसमें छिद्र द्वारा प्रवेश करता था। यह पूरा भरने पर एक निश्चित समय में आवाज के साथ नदी के जल में डूब जाता था—यही समय की इकाई समझी जाती थी।

चन्द्रमास दो नवीन चन्द्रमाओं की मध्यावधि के बराबर होता था और इसमें $29\frac{82}{62}$ दिवस होते थे। यह वैधानिक मास $\frac{30}{62}$ अंश छोटा था। एक चन्द्रदिवस (तिथि) एक वैधानिक दिन से दिन के 1/62 अंश छोटा था। दूसरी ओर तीन दिन का वैधानिक मास $30\frac{1}{2}$ दिन के सौर मास से आधा दिन छोटा होता था। चन्द्र और वैधानिक समय के अन्तसम्बन्ध के लिये सूत्रों का प्रयोग किया जाता है, जो ग्रंथ में दिये हुए हैं। धार्मिक अनुष्ठानों के लिये समय की अधिकांश गणना सावन अथवा वैधानिक पद्धति के आधार पर की जाती थी।

"इस प्रकार लगध ने मास, वर्ष, मुहूर्त, लग्न, पर्व दिवस, ऋतु, आयन तथा मास की अपनी व्याख्या प्रस्तुत की। उस विद्वान को; जो चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों की गति का ज्ञाता है, इस संसार में अच्छी संतति प्राप्त होगी तथा (मृत्यु के पश्चात्) उसे चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों के संसार में प्रवेश मिलेगा।"

अशोक द्वारा उपयोग

इस काल के खगोल विज्ञान का प्रमुख ध्येय धार्मिक अनुष्ठानों के समय का निर्धारण करना था। ज्योतिष वेदांग में वर्णित सिद्धांतों पर आधारित समय की गणना का उपयोग ई० पू० तीसरी शताब्दी में भी सम्राट अशोक ने अपनी प्रस्ताविस्त बौद्ध तीर्थों की यात्रा की सही अवधि की गणना में किया। इस तथ्य से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि उस समय तक वैदिक खगोल का सामान्य उपयोग किया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जाता था। उत्तरकाल में ज्योतिष वेदांग की मूलभूत शिक्षाओं का जैनधर्म की पुस्तकों में समावेश किया गया। जैनधर्म का उदय लगभग उसी समय हुआ जब बुद्ध धर्म का अर्थात् ई० पू० छठी शताब्दी में। जैन ग्रंथों ने ज्योतिष वेदांग में कतिपय अस्पष्ट अनुच्छेदों के स्पष्टीकरण में सहायता प्रदान की है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अँकों का अन्वेषक :

मेधातिथि

मानव-मस्तिष्क में गिनती करने का विचार संभवतया पशु, तारे आदि जैसी वस्तुओं को पहचानने की क्षमता के साथ ही उदय हुआ होगा। प्रारम्भ में शायद गिनती छोटे-छोटे पत्थरों से अथवा उँगलियों की सहायता से की जाती थी। किन्तु गिनी गई वस्तुओं की संख्या बताने के लिये किसी प्रकार की उच्चरित पारिभाषिकी अर्थात् बोले जाने वाले अंकों का अवश्य ही आविष्कार और प्रयोग किया गया होगा। अब यह सर्व विदित है कि गिनी गई संख्याओं की विधि एवं मात्रा का विकास भिन्न-भिन्न सभ्यताओं में अलग-अलग प्रकार से हुआ।

वैदिक काल के एक ऋषि में मेधातिथि ने अति उच्च अंकों को एक क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया बताते हैं। ऋग्वेद, अथर्व और यजुर्वेद में भी सैकड़ों ऋचाओं के साथ मेधातिथि का नाम जुड़ा हुआ है। वह वैदिक काल के एक विख्यात वंश-कण्व गोत्र के थे। यजुर्वेद में उनके नाम से सम्बद्ध एक श्लोक में अंकों के नामों की सूची निम्न रूप में दी गई है :

"हे अग्निदेव ! ये ईंटें मेरी अपनी दुधारु-गाय के समान—एक और दस, एक शत (सौ), सहस्र हजार, एक अयुत (दस हज़ार), एक नियुत (लाख), एक प्रयुत (दस लाख), एक अर्बुद (करोड़) एक न्यार्बुद (दस करोड़), एक समुद्र (अरब), एक मध्य (दस अरब)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और अंत (खरब), परार्ध (दस खरब) हो जायें । ये ईंटें इस संसार और अगले संसार में भी मेरी अपनी दुधारु गाय हो जायें ।"

एक परार्ध 1012 होता है । मेधातिथि के गिनती करने के ढंग में अंक दस और इसके गुणजों पर आधारित हैं ।

लिखे हुए अंक

गिनी हुई वस्तुओं, दिन अथवा वर्षों का आद्यतम अंकन पत्थर, फर्श अथवा दीवार पर सीधी रेखाओं द्वारा लगाकर किया गया लगता है । यह ढंग छोटी संख्याओं के लिए उपयुक्त था किन्तु बड़ी संख्याओं के लिए शायद यह तरीका उपयुक्त नहीं था । ऋग्वेद में कुछ संदर्भों से यह प्रमाणित होता है कि उस काल में छोटे अंकों को निश्चित रूप से लिखा जाता था, उदाहरणस्वरूप श्लोक अथवा पासे अंकित होते थे । यह कल्पना की जाती थी कि संख्याओं को निर्दिष्ट करने के लिये पासों पर अवश्य ही कुछ लिखा जाता होगा अथवा चिन्ह बनाये जाते होंगे । इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर यह उल्लेख मिलता है, "मुझे एक सहस्र गाय प्रदान करो जिनके कानों पर 88 का अंक पड़ा हो ।" इससे आठ के अंक के कोई निशान होने का प्रमाण मिलता है । किन्तु ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह प्रकट होता है कि मेधातिथि के काल में बड़े अंक बोले जाने के साथ लिखे भी जाते थे ।

अशोक के काल और उसके पश्चात प्रयुक्त 1 से 9 तक के अंकों के ब्राह्मी चिन्हों को कुछ आधुनिक गवेषणकर्ताओं ने सिंधु घाटी सभ्यता के स्थलों पर खुदाई में मिली मोहरों पर अंकित लिपि का कहीं अधिक विकसित रूप बताया है । इन चिन्हों तथा 10, 100, 1000 आदि के चिन्हों की सहायता से बड़े अंकों को लिखना सम्भव था । उदाहरण-स्वरूप 4000 लिखने के लिये पहले हजार का चिन्ह बनाकर उसके बाद चार का चिन्ह बना दिया जाता था । किन्तु इस उलझे ढंग का स्थान उत्तर काल में धीरे-धीरे एक नई विधि ने ले लिया ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्थान-मूल्य अंकन पद्धति

मेधातिथि द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर आधारित इस उत्तम और नवीन विधि में 1 से 9 तथा शून्य के चिह्नों को इस प्रकार लिखा जाता था कि स्वयं अंकों के स्थान से ही उनके मूल्य का पता लग जाता था तथा बड़ी संख्याओं के लिए अलग चिह्नों की आवश्यकता नहीं थी। इस नवीन विधि के प्रयोग का प्राचीनतम प्रमाण बक्षाली पाण्डुलिपि में मिलता है, जिसकी मूल रचना 200 ई० के आसपास हुई बताई जाती है। बाद में आर्यभट्ट ने अपनी 'आर्य भटीय' में (499 ई०) वराहमिहिर ने अपने 'पंच सिद्धांत' (522 ई०) में, जैन भद्र मणि (529-589 ई०) ने तथा अन्य व्यक्तियों ने अंक लिखने के लिए स्थान-मूल्य विधि का उपयोग किया। छठी शताब्दी ई० तथा इसके बाद के विभिन्न शिलालेखों में इसी विधि का उपयोग मिलता है। विद्वानों का ऐसा विचार है कि गणित के ग्रन्थों में इस नवीन पद्धति के प्रयुक्त होने तथा विद्वानों को इस पद्धति के प्रयोग से परिचित होने में कई शताब्दी लग गई होंगी। अतः इस पद्धति के अद्यतन आविष्कार को ई० पू० दूसरी शताब्दी के आसपास हुआ माना जाता है।

चिन्हों का प्रयोग

गणित, खगोल तथा अन्य विषयों के भारतीय ग्रन्थों में से बहुत से ग्रन्थों की रचना साधारण गद्य के स्थान पर काव्य-रूप में की गई है। अग्नि पुराण (200 ई०) इन ग्रन्थों का प्राचीनतम उदाहरण है। इनके लेखकों को अंकों के चिन्हों के लिये उनके उचित स्थानों पर कुछ विशेष वस्तुओं के नाम का प्रयोग करना सुविधाजनक प्रतीत हुआ। 1 के अंक के लिए वह पृथ्वी, चन्द्रमा अथवा परमात्मा लिखते थे। दो (2) के लिए हाथ अथवा आँखों का जोड़ा तथा शून्य के लिये आकाश आदि का प्रयोग होता था। इन शब्दों का प्रयोग श्लोक के छन्द-निर्माण में उनकी उपयुक्त के अनुसार किया जाता था। उदाहरण स्वरूप 265329622644706499 को उन्होंने निम्न प्रकार से लिखा है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

26	53	29	62	
सद् विम्सास्क	त्रिपनकास	इकोनात्रिम्सा	इवाचाद्वासा (स्ति)	
26	44	70	64	99
सद्विम्सा	चतुर्चिएत्वरिम्सा	सप्ताति	चतुष्षष्ठी ना	(वनवति)

बाद में इसी उद्देश्य के लिये कम स्थान घेरने की दृष्टि से शब्दों की जगह वर्णमालीय चिन्हों का प्रयोग होने लगा। उदाहरणस्वरूप 5775336 को अंकित करने के लिये वह क य गि यि नु सु च लृ लिखते थे।

भारतीय योगदान

संसार के सभी देशों में स्थान-मूल्य अंकन की दार्शनिक पद्धति का प्रयोग भारत में ही सबसे पहले किया गया था। अरब वासी भारतीय पद्धति से आठवीं शताब्दी से परिचित हुए जब खलीफ़ा मन्सूर (753-7743 ई०) के शासन ई० काल में भारत के कुछ विद्वान बग़दाद गये और अपने साथ गणित के कतिपय ग्रन्थ ले गये। अरब वासियों से भारतीय पद्धति यूरोपवासियों तक पहुँची। यूरोप में अंकों को स्थान-मूल्य-पद्धति के अनुसार लिखने का प्रारम्भ सर्वप्रथम 10वीं अथवा 11वीं शताब्दी ई० में हुआ किन्तु गणित की पुस्तकों में इस पद्धति का सामान्य रूप से बहुत बाद में—17वीं शताब्दी ई० में उपयोग किया गया।

अंक लिखने की दार्शनिक स्थान-मूल्यांकन पद्धति गणित संसार को भारत का योगदान है और इस पद्धति को महानतम आविष्कारों में एक महत्वपूर्ण आविष्कार समझा जाता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गणित के प्रकांड पण्डित :
आर्यभट्ट

वैदिक काल के पश्चात और ईसा काल की प्रारंभिक शताब्दियों के शुरू में भारत में खगोल और गणित के क्षेत्र में अद्‌भुत प्रगति हुई। 'आर्यभटीय' उस युग का हिन्दू खगोल और गणित का सबसे प्राचीन सुरक्षित ग्रन्थ है, जिसे आर्य भट्ट नामक व्यक्ति ने लिखा बताते हैं। केवल इस ग्रन्थ की बाद में लिखी गई टीकाओं तथा इस ग्रन्थ के उदाहरणों से ही हमें आर्यभट्ट और उसकी कृति के बारे में जानकारी मिलती है।

आर्यभट्ट का काल

आर्यभट्ट, उसके परिवार और उसके माता-पिता के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कहा जाता है कि आर्यभट्ट कुसुमपुर (पटना, बिहार में) का रहने वाला था। अपने जन्म-काल के बारे में उसने स्वयं अपने ग्रन्थ में लिखा है "जब वह 23 वर्ष का था, उस समय 60 वर्षों के 60 युग और तीन युगपद (सतयुग, त्रेता और द्वापर) बीत चुके थे।" इसके अनुसार, उनका जन्म 476 ई० के आसपास हुआ था। उसकी कृति में दिये बहुत से खगोलीय तथ्यों के आधार पर कतिपय विद्वानों द्वारा की गई गणनाओं से भी यही संकेत मिलता है कि आर्यभट्ट संयततम मान्यताओं के हिसाब से अधिक पाँचवीं शताब्दी ई० में रहे होंगे।

इसी युग को भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

'भारत का स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस काल में गुप्त सम्राटों के शासनकाल में विज्ञान, साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधियों का अद्भुत उत्कर्ष हुआ।

आर्य भटीय

आर्यभट्ट के ग्रन्थ 'आर्य भटीय' को 'आर्य-सिद्धांत' भी कहा जाता है। सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि यह ग्रन्थ छठी शताब्दी के प्रारम्भ में पूरा हो गया था। यह ग्रन्थ खगोल और गणित की कोई विस्तृत पुस्तक नहीं है, अपितु यह एक संक्षिप्त वर्णनात्मक पुस्तक है, एक प्रकार का सारांश जिसका उद्देश्य सामान्य ज्ञात तथा सहमत मामलों तथा प्रक्रियाओं का संपूर्ण करना है। इसमें खगोल के सम्बन्ध में आर्यभट्ट की अपनी पद्धति के केवल अति विशिष्ट लक्षण ही दिये गये हैं। यह ग्रंथ चार पादों में विभाजित है। पहले भाग दशगीतिक में 10 पद हैं तथा इसमें बड़ी संख्याओं को संस्कृत वर्णमाला में व्यक्त करने की विधि का वर्णन किया गया है। दूसरी भाग गणित पाद है जिसमें 33 पद्य हैं। तीसरे भाग काल क्रिया पाद में समय की गणना से संबंधित 25 पद्य हैं और चौथे भाग गोल पाद में वृक्ष के बारे में 50 पद्य हैं अंतिम तीन भागों में कुल मिलाकर 108 पद्य हैं और इन्हें सामूहिक रूप से आर्यस्तसत कहते हैं।

खगोल विज्ञान

अपने ग्रंथ में आर्यभट्ट ने नवीन प्रेक्षण प्रस्तुत किये तथा कुछ पुराने प्रेक्षणों का खंडन किया। उस समय रूढिवादी विचारों के विपरीत आर्यभट्ट ने कहा कि पृथ्वी गोल है तथा अपनी धुरी पर घूमती है। उन्होंने चन्द्र और सूर्य ग्रहण के कारणों के सही सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि ग्रहण राहु के कारण नहीं अपितु पृथ्वी और चन्द्रमा की छाया के कारण होते हैं। उन्होंने लिखा है कि चन्द्रमा अनिवार्यतः अंधकारपूर्ण है तथा सूर्य द्वारा प्रदीप्त होता है। उन्होंने अयनान्त बिन्दु (सूर्य की वार्षिक उत्तर-दक्षिण यात्रा के दो छोर बिन्दुओं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में से एक) तथा विषुव बिन्दु (उन दो बिन्दुओं में से एक जिन पर सूर्य अर्द्धवर्ष में खगोलीय विषुवत् रेखा पर से गुजरता है) की गति का उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने इस को एक नियमित दोलन तक सीमित कर दिया और इसकी सीमा और अवधि भी निर्धारित की। उन्होंने अधिचक्रों (बड़े वृत की परिधि पर घूमता हुआ एक छोटा वृत) के सिद्धांत का विकास किया, जिसके द्वारा ग्रहों की गति को निरूपित किया जाता है।

गणित

आर्यभट्ट ने वीजगणित की नींव भी रखी और ज्यामिति में बहुत से प्रेक्षण किये। उन्होंने प्रथम घात के अनिर्धार्य समीकरणों (ऐसी समीकरण जिसमें x की एक घात होती है तथा जिसमें x का मूल्य पूर्ण सांख्यिक पदों में नहीं निकाला जा सकता) को हल करने की एक विधि वताई। संभवतया उन्होंने ही सर्वप्रथम कुट्टकार अथवा सम्पेषक की धारणा का भी प्रतिपादन किया, जिसका भारत में अन्य व्यक्तियों ने आगे चलकर विकास किया। उन्होंने 1 (पाई) का मूल्य 3·1416 प्राप्त किया जो चार दशमलव स्थानों तक सही है। उन्होंने प्रकाश के मार्ग में रखी किसी वस्तु की छाया के आकार को मापने की एक विधि भी वताई और इसी ने ग्रहण के समय की गणना का आधार प्रस्तुत किया। अपने पद्यों में से एक पद्य में उन्होंने पाइथेगोरस के प्रेमेय को भी उद्धृत किया।

संख्या पदों का वर्णमाला में अंकन

आर्यभट्ट ने वड़ी संख्याओं को अक्षरों द्वारा व्यक्त किया। आर्यभट्ट इस प्रकार का अंकन इस कारण कर सके, क्योंकि प्राचीन भारतीय स्वर वैज्ञानिकों ने एक ऐसी स्वाभाविक वर्णमाला तैयार की थी जिसमें 15 स्वर थे, 25 स्पर्शवर्ण व्यंजन (क से म तक) तथा आठ अन्य अक्षर थे (य से ह तक)। आर्यभट्ट ने स्पर्श-वर्ण व्यंजनों को स्वर 'अ' से पहले रखकर 1 से 25 तक की संख्याओं के अंकन के लिये प्रयुक्त किया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

और जब इन अक्षरों को अन्य स्वरों में पहले रखा जाता था तो यही इन संख्याओं की उच्च दाशमिक शक्तियों का (10 16 तक) अंकन करते थे। य से ह तक के अक्षरों को 30 से 100 तक की संख्याओं को प्रकट करने के लिये प्रयोग किया गया। इस प्रकार 'त' 3 के लिये 'ति' 300 के लिये तथा 'तु' 30,000 को प्रकट करता था। उनके वर्णमाला-अंकन का एक अन्य उदाहरण है—उन्होंने एक महायुग में चन्द्रमा की परि-क्रमाओं की संख्या को "क य गि दि नु सु च लृ" शब्द से व्यक्त किया। दायें से बायें को एक-एक अक्षर क्रमशः 6, 30, 300, 3000, 50000, 700,000, 700,00,00, 50, 000,000 संख्याओं को प्रकट करता है—अर्थात संख्या 577533316 हुई। यह विश्वास करना कठिन है कि इस प्रकार का विवरणात्मक वर्णमाला अंकन स्थान-मूल्य अंकन पद्धति पर आधारित नहीं था।

किन्तु ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि इन अक्षरों द्वारा वास्तविक गणना की जाती थी। सम्भावना यह है कि आर्यभट्ट गणना में प्रयुक्त करने के लिये किसी संख्यात्मक-अंकन की पद्धति का आविष्कार नहीं कर रहे थे अपितु उन्होंने पद्य में बड़ी और भारी-भरकम संख्याओं को अति संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने की एक पद्धति की युक्ति निकाली। वर्णमाला द्वारा अंकन की इस पद्धति का उन्होंने केवल दशगीतिक में ही प्रयोग किया। ग्रंथ के अन्य भागों में छोटे आकार की ही कुछ संख्याएँ हैं, अतः उन्हें व्यक्त करने के लिये आर्यभट्ट ने संख्याओं को प्रकट करने वाले साधारण शब्दों का ही प्रयोग किया है।

वैज्ञानिक प्रवर्त्तक

आर्यभट्ट प्राचीन भारत के वैज्ञानिक प्रवर्तकों में सर्वाधिक मौलिक योगदान करने वालों में से एक थे। वह ज्ञात हिन्दू लेखकों में सबसे प्राचीन हैं जिन्होंने बीजगणित पर सविस्तार विचार किया है।

इनके परम्परा-विरुद्ध विचारों के कारण बाद के लेखकों ने, प्रमुख रूप से ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट्ट का विरोध किया। ब्रह्मगुप्त इनके प्रति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इतना अनुदार था कि उसने केवल आर्यभट्ट के प्रति घृणा के कारण ही सत्य तक की अवहेलना की।" किन्तु, परवर्ती हिन्दू वैचारिक आर्यभट्ट के प्रति कुछ अधिक अनुकूल रहे। आठवीं शताब्दी के मध्य तथा नवीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में अब्बासिद्दी खलीफाओं अलमन्सूर और अलमामू के शासनकाल में खगोल-विज्ञान की आर्यभट्ट पद्धति अरब जगत में प्रसिद्ध थी। अरबी में आर्यभट्ट का उच्चारण 'आर्जमर' के रूप में किया जाता था।

महान यूनानी बीजगणितज्ञ, डायोफेंटस, (जिन्हें ३६० ई० के लगभग सम्राट् जुलियन के समय में हुआ समझा जाता है) के साथ आर्यभट के बीजगणित के ज्ञान की तुलना से यह प्रकट होता है कि आर्यभट्ट को कई अज्ञात पदों वाली समीकरण को हल करने का ज्ञान था जबकि डायोफेन्टस इससे अनभिज्ञ था। आर्यभट्ट को कम-से-कम प्रथम घात वाली अनिर्धार्य समीकरणों को हल करने की सामान्य विधियाँ भी ज्ञात थीं और इस दृष्टि से वह डायोफेन्टस से बहुत आगे था।

कालान्तर में परिवर्ती लेखकों ने आर्यभट्ट को उद्धृत तो किया है किन्तु उनका मूलग्रन्थ उपलब्ध नहीं था तथा इसे लुप्त समझा गया। 'ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एलबेरुनी ने लिखा है कि, "उन्हें आर्यभट्ट की पुस्तक का कोई भी अंश प्राप्त नहीं हो पाया और उन्हें आर्यभट्ट के बारे में जो भी जानकारी मिली वह ब्रह्मगुप्त द्वारा दिये गये उनके ग्रंथ के उदाहरणों से ही प्राप्त हुई।" और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कोलब्रुक ने लिखा है कि, "भारत के विभिन्न भागों में दीर्घ और परिश्रमपूर्ण खोज के पश्चात भी आर्यभट्ट द्वारा रचित बीजगणित-सम्बन्धी अथवा कोई भी अन्य पुस्तक प्राप्त न हो पाई।"

किन्तु 1874 ई० में लीडेन में कर्न ने 'आर्यभटीय' को प्रकाशित किया। इसमें गणित और खगोल से सम्बन्धित आर्यभट्ट के सिद्धांतों का समावेश था। यही ग्रंथ प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक में से एक आर्यभट्ट के बारे में हमारे ज्ञान का आधार प्रस्तुत करता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रोमक सिद्धान्त का खगोलविद् :

श्रीसेन

श्रीसेन को सामान्यतया रोमक सिद्धांत नामक खगोल विज्ञान के ग्रंथ का मूल लेखक अथवा अधिक संभाव्यत: संशोधनकर्त्ता स्वीकार किया जाता है। इस पुस्तक की रचना 500 ई० से पहले हुई थी। यह खगोल।सम्बन्धी भारत के प्राचीनतम ग्रंथों में से एक है। इस पुस्तक में प्रारंभिक यूनानी खगोल का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट होता है तथा इसमें यूनानी खगोल के कतिपय तत्वों का समावेश है।

रोमक सिद्धान्त

इसमें 2850 वर्षों के एक चान्द्रसौर के एक चक्र को एक युग वताया गया है। यह 19 वर्ष के मेटोनीय चक्र की अपेक्षा 150 गुना अधिक है, जिसका नामकरण यूनानी खगोलविद् मेटोने के नाम पर हुआ है। यद्यपि श्रीसेन ने यूनानी स्रोतों से ग्रहण तो किया किन्तु भारतीय खगोल की पद्धतियों के अनुसार गणना करने में सुविधा की दृष्टि से इसको भारतीय आवश्यकताओं के अनुसार रूपान्तरित कर लिया है, जिसमें सौर-वर्ष चान्द्रमास और दिवसों को पूर्ण सांख्यिक अंकों में व्यक्त किया जाता है।

रोमक सिद्धांत के अनुसार एक वर्ष में 365 दिन 5 घण्टे 55 मिनट और 12 सेकंड होते हैं। इसकी गणना एक चक्र में वर्षों की संख्या 2850 को सौरमास की संख्या 12 से गुणा करके की जाती हैं। इसमें

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्तर्वेशी मासों की संख्या 1050 जोड़ने से चान्द्र-मासों की संख्या प्राप्त हो जाती हैं। इसे 30 से गुणा करने पर चान्द्र-दिवसों की संख्या आ जाती है। जिसमें से यदि छोड़े हुए चान्द्र दिवसों की संख्या 16547 को घटा दिया जाये तो परिणाम में 1040953 प्राकृतिक दिन आ जाते हैं। इस संख्या को 2850 से भाग करने पर ऊपर वताये गये वर्ष की सही लम्बाई आ जाती है।

रोमक सिद्धांत में खगोल की भिन्न-भिन्न प्रकार की गणना करने की विधियाँ बताई गई हैं। वर्षों के एक चक्र अर्थात् युग के प्रारम्भ से गुजरते हुए दिनों की संख्या ज्ञात करने के लिए सिकन्दरिया (यवनपुर) की माध्याह्निक रेखा से सम्बद्ध गणनाएं दी हुई हैं। इन गणनाओं का निर्देशकाल 427 शक संवत् अथवा सन् ५०५ ई० लिया गया है। (विभिन्न विद्वानों के अनुसार यह वर्ष रोमक सिद्धांत में रचना-काल को प्रकट नहीं करता। रोमक सिद्धांत में दिन का प्रारम्भ मूल भारतीय रीति के अनुसार अर्द्ध-रात्रि अथवा सूर्योदय से नहीं माना जाता अपितु सूर्यास्त से तथा उज्जयिनि के मध्यान्हिक के स्थान पर सिकन्दरिया 'यवनपुर' के माध्यान्हिक से माना गया है। इस तथ्य से यूनानी खगोल का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। इसमें सूर्य और चन्द्रमा के माध्य स्थानों, चन्द्रमा के पाद की परिक्रमा की लम्बाई तथा चन्द्रमा की वड़े से बड़े और सही विक्षेप की गणना करने की विधियाँ दी हुई हैं। इसके अतिरिक्त इसमे कोणान्तर समीकरण की तालिका भी दी हुई है।

गृहीत विचार

वराह मिहिर की पुस्तक 'पंच सिद्धांत' 550 ई० में वर्णित पांच सिद्धांतों में से एक के रूप में रोमक सिद्धांत का समावेश है और रोमक के बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान इसी वर्णन पर आधारित है। किन्तु रोमक सिद्धांत के लेखक श्रीसेन को परिवर्ती विख्यात खगोलविद् एवं गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त श्रेष्ठ वैज्ञानिक नहीं समझते। ब्रह्मगुप्त ने अपनी पुस्तक ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत में लिखा है, "श्रीसेन ने सूर्य, चन्द्रमा, मंगल,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि की माध्य गतियों के नियम लता से ग्रहण किये तथा अधिचक्रों की वास्तविक गतियों से सम्बन्धित नियम आर्यभट्ट से ग्रहण किये और इस प्रकार रोमक सिद्धांत को, जो हीरे-जवाहारात का भंडार था, श्रीसेन ने पैबन्द लगे वस्त्र में परिवर्तित कर दिया।'' बाद में एलबेरुनी 103 ई० ने लिखा है कि रोमक और पोलिश सिद्धांत के अनुसार की गई गणनायें बहुत सही नहीं होतीं।

श्रीसेन का रोमक सिद्धांत बहुत पहले ही लुप्त हो गया प्रतीत होता है। किन्तु लन्दन के भारतीय दूतावास पुस्तकालय में एक अप्रामाणिक रोमक सिद्धांत उपलब्ध है जिसे संभवतया 1600 ई० के आसपास गढ़ा गया होगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वोन्मुखी वैज्ञानिक :

वराहमिहिर

वैदिक काल के पश्चात् दर्शन-शास्त्र-सरीखे अन्य विषय-क्षेत्रों में ज्ञान के विस्तृत होते हुए क्षितिज तथा गुप्त काल की समृद्धि के कारण विश्व को, जिसमें मनुष्य रहता है, और अच्छी तरह से समझने के लिए खगोल सम्बन्धी विविध प्रकार की घटनाओं के अध्ययन में रुचि उत्पन्न हुई। यूनान जैसे विदेशों के लोगों से सम्पर्क होने के फलस्वरूप मानव-प्रयत्नों के अन्तःक्षेत्रों की भाँति ही खगोल सम्बन्धी विचार और दृष्टि-कोणों का भी आदान-प्रदान प्रारम्भ हुआ।

इस परिवेश में ही मगध राज्य—मध्यभारत स्थित उज्जयिनी नामक स्थान पर एक ब्राह्मण आदित्य दास का पुत्र—वराहमिहिर रहता था। उन दिनों उज्जयिनी एक प्रमुख नगर था। वराहमिहिर की कृतियों में दिये गये भिन्न-भिन्न तथ्यों के आधार पर की गयी गणनाओं के अनुसार वराहमिहिर पाँचवीं शताब्दी 499 ई० के अन्त में हुए। उनकी मृत्यु 587 ई० में हुई।

वराहमिहिर खगोल—गणित-ज्योतिष और फलित ज्योतिष के बहुकृतिक लेखक थे। उनकी अधिकांश कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं और जो अनुपलब्ध हैं, उनकी जानकारी हमें उनके टीकाकार भटोत्पल (658 ई०) से प्राप्त होती है। उनकी तमाम कृतियों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। पहला भाग खगोल पर है तथा दूसरा और तीसरा भाग अधिकाँशतया फलित ज्योतिष के बारे में है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पंच-सिद्धांत

उनकी कृतियों के पहले भाग को 'पंच-सिद्धांत' कहते हैं। यह भाग खगोल के उस समय प्रचलित पाँच सिद्धांतों यथा, पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, सूर्य तथा पितामह सिद्धांत पर अनिवार्यतः आधारित है। इन पाँच सिद्धांतों में से चार सिद्धांतों का मूल रूप अब उपलब्ध नहीं है और हमें इनके बारे में जानकारी अधिकांशतया पंच सिद्धांत से ही मिलती है। इन सिद्धांतों में से केवल सूर्य सिद्धाँत ही आज तक चलता आया है। कहा जाता है कि वराहमिहिर ने सामान्यतयः आर्यभट्ट के सिद्धांतों के आधार पर इसके स्थिरों तथा विधियों में परिवर्तन कर इस सिद्धांत को अधुनातन बिना दिया। पाँच सिद्धाँतों की यथार्थता के, बारे में वराहमिहिर ने टिप्पणी की है। 'पौलिश सिद्धांत सही है रोमक भी इसके समक्ष ही है, सूर्य सिद्धांत अपेक्षाकृत अधिक सही है तथा शेष दो सिद्धांत सत्य से काफी दूर हैं।"

पुस्तक के शीर्षक पंच सिद्धाँत से भारतीय खगोल के कतिपय प्रारम्भिक लेखकों को यह भ्रान्ति हो गई कि वराहमिहिर पाँचों सिद्धांतों का मूल लेखक है। यह धारणा अब गलत सिद्ध हो चुकी है। बाद में एलब्रेरुनी 1031 ई० ने वराहमिहिर की इस कृति को श्रेष्ठ नहीं माना। उन्होंने लिखा है, "वराहमिहिर ने पंच सिद्धांत नामक एक लघु क्षेत्र की रचना की है जिसका अर्थ होता है कि इसमें पूर्ववर्ती पाँच सिद्धाँतों का सार सम्मिलित है किन्तु ऐसा इसमें नहीं है और न ही यह उनसे और अधिक श्रेष्ठ है कि इसे पाँचों सिद्धांतों में सर्वाधिक सही कहा जा सके।"

ज्ञान के पक्ष

वराहमिहिर ने खगोल के उन सभी विविध पक्षों का उल्लेख किया जिसका ज्ञान तत्कालीन ज्योतिषी के लिये आवश्यक माना जाता था। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से हमें इस पुस्तक से वराहमिहिर के ज्ञान का पता चलता है। उन्होंने लिखा है, "गणित ज्योतिष के क्षेत्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में उसे आकाश के विभाजन तथा युग, वर्ष, अर्द्धवर्ष, ऋतु, मास, अर्द्ध-मास, दिवस महूर्त, घड़ी, पल, प्राण, विपल, प्रति आदि में समय के विभाजन का ज्ञान अवश्य होना चाहिये जैसा कि पाँच सिद्धांतों में बताया गया है। उसे यह भी जानना चाहिये कि मास चार प्रकार के—सौर्य, सावन, नक्षत्र तथा चन्द्र—क्यों होते हैं तथा महीनों को क्यों जोड़ा जाता है और दिनों को क्यों घटाया जाता है। उसे साठ वर्ष के जीवीय चक्र के प्रारम्भ और अन्त का ज्ञान भी होना चाहिये। उसे चक्र, वर्ष, दिन, घंटों तथा क्रमशः इनके स्वामियों का ज्ञान भी होना चाहिये। उसमें यह स्पष्ट करने की योग्यता भी हो कि चन्द्र, नक्षत्र, तथा सावन समय की गणना से तुलना करने पर सौर-समय की गणना में समानता अथवा विभिन्नता किस प्रकार होती है तथा इनमें से प्रत्येक के उपयोग का ज्ञान भी उसे होना चाहिये। विविध सिद्धांतों के मध्य असंगति होने पर उसे प्रयोगात्मक रीति से अर्थात् छाया और जल घड़ी तथा प्रेक्षण और गणना के बीच सहमति द्वारा यह सिद्ध करने के समर्थ होना चाहिये कि सूर्य अयनान्तिक विन्दु पर कब पहुंचा और कितनी घड़ियों में सूर्य ऊर्ध्वाधर उषाकाल में प्रवेश करता है। उसे सूर्य तथा ग्रहों की तेज़ और धीमी गति के कारण, उत्तरी और दक्षिणी गति तथा गतिमय माध्य अधिचक्र का ज्ञान होना चाहिये। उसे सूर्य और चन्द्रग्रहण के प्रारम्भ और समाप्ति का समय, दिशा, माप अवधि, प्राच्छादन की मात्रा, रंग और स्थान तथा नौ ग्रहों के भावी संयोग तथा विरोधी टकराव को भी वताना चाहिये। उसे पृथ्वी से योजनों में व्यक्त प्रत्येक ग्रह की दूरी को निर्धारित करने में भी प्रवीण होना चाहिये, इसके अतिरिक्त इनकी कक्षाओं की मापों को तथा पृथ्वी पर स्थानों की दूरी को योजनों में व्यक्त करना भी आना चाहिये। उसे ज्यामिति के क्रिया-कलापों में तथा पृथ्वी के रूप, तारापुंज आदि के परिपथों के वृत्त ध्रुव के अवनमन, दिन-वृत्त के व्यास, समय में विषुवासीय अन्तर, शंकुनों के उदय, शंकु की छाया के अनुकूल घड़ियों तथा इसी प्रकार की प्रक्रियाओं के निर्धारण हेतु समय की गणना करने में पारंगत होना भी आवश्यक है।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पृथ्वी की आकृति

वराहमिहिर ने अपने समय में वादग्रस्त विविध प्रश्नों पर अपने मत को भी व्यक्त किया। पृथ्वी की आकृति के बारे में उन्होंने लिखा है : "ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली सभी वस्तुएं पृथ्वी की गोलाकार आकृति के पक्ष की साक्षी हैं।" पृथ्वी-तल पर वस्तुओं की स्थिति तथा इसकी प्राकृतिक आकर्षण-शक्ति (गुरुत्वाकर्षण) के बारे में उन्होंने लिखा है : "पर्वत, नदी, वृक्ष, नगर, मनुष्य और देवदूत सभी भूमडल के चारों ओर हैं। यदि यमकोटी और रूम (नगर) एक-दूसरे के आमने-सामने हैं, तो उनमें से कोई यह नहीं कह सकता कि 'एक' दूसरे की अपेक्षा 'नीचा' है, क्योंकि 'नीचे' का अस्तित्व नहीं है। पृथ्वी के किसी भी स्थान के बारे में यह कैसे कहा जा सकता है कि वह 'नीचा' है, क्योंकि वह स्थान हर दृष्टिकोण से पृथ्वी पर दूसरे स्थानके सादृश्य मेंहै, अतः कोई भी स्थान एक-दूसरे की अपेक्षा 'गिरा हुआ' हो ही नहीं सकता। प्रत्येक अपने बारे में केवल स्वयं को ध्यान में रखकर ही कहता है : "मैं ऊपर हूं तथा अन्य नीचे हैं," जब कि वे सभी भूमंडल पर ही होते हैं उसी प्रकार जैसे किसी कदम्ब वृक्ष की शाखाओं पर फूल खिले होते हैं। वे इसके चारों ओर होते हैं किन्तु अलग-अलग प्रत्येक फूल की स्थिति वही होती है जैसी किसी अन्य फूल की, न कोई नीचे की ओर लटका होता है और न ही कोई ऊपर की ओर सीधा होता है। क्योंकि पृथ्वी उस सभी को, जो कुछ भी उसके ऊपर है, आकर्षित करती है, क्योंकि सभी दिशाओं में यही 'नीची' है और आकाश सभी दिशाओं में 'ऊपर' है।

किन्तु वराहमिहिर पृथ्वी को विश्व के केन्द्र में स्थित एक स्थिर गोला समझते थे जिसके चारों ओर सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह परिक्रमा करते हैं। उन्होंने लिखा है कि यदि पृथ्वी में गति होती तो, "वह पक्षी जो पश्चिम की ओर उड़ा है, तुरन्त ही अपने घोंसले में वापस नहीं आ पाता।" यह विचार आर्यभट्ट द्वारा प्रतिपादित इस प्राथमिक मत के विपरीत था कि पृथ्वा घूमती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

फलित ज्योतिष

वराहमिहिर की पुस्तक का दूसरा भाग फलित ज्योतिष से संबंधित है। 'वृहज्जातक' नामक कृति अब भी उपलब्ध है। इसमें 25 अध्याय हैं और इसमें केवल कुंडली से संबंधित फलित ज्योतिष का वर्णन है। यात्रा एवं विवाहों का विवेचन करने वाली 'वृहद्यात्रा' और 'वृहद्-पटल' नामक दो अन्य कृतियां संभवतया अभी तक नहीं मिल पाई हैं।

उनकी कृति का तीसरा भाग आम तौर पर 'वृहत्संहिता' के नाम से जाना जाता है। यह पूर्ण रूप में अब भी उपलब्ध है। लेखक की संक्षिप्तता की घोषणा के बावजूद इस भाग में 100 से ऊपर अध्यायों में वितरित लगभग 4000 दोहे हैं।

यूनानी प्रभाव

वराहमिहिर की कृतियों में हमें यूनानी खगोल का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में मिलता है। वह पोलिश और रोमक नामक दो सिद्धान्तों को अच्छा मानते थे। यह सिद्धांत सिकन्दरिया और रोम के स्रोतों पर आधारित बताये जाते हैं। उन्होंने इन सिद्धान्तों को 'यथार्थ' बताया है। फलित ज्योतिष की अपनी पुस्तक में उन्होंने कुछ विशेष पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जिन्हें यूनानी से व्युत्पन्न बताया जाता है। वह यूनानियों के ज्ञान को निश्चित ही श्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने लिखा है : "यूनानी यद्यपि अपवित्र होते हैं, फिर भी उनका सम्मान किया जाना चाहिए, क्योंकि वे विज्ञानों में पारंगत हैं तथा अन्य देशों से आगे हैं।" अपने ग्रंथ 'वृहत्संहिता' में उन्होंने यूनानियों को बार-बार उद्धत किया है।

अलबेरुनी द्वारा मूल्यांकन

परिवर्ती काल में अलबेरुनी आमतौर पर वराहमिहिर के बारे में उत्तम मत रखते थे, जैसा कि उनके लेखनों से प्रकट होता है : "यदाकदा ऐसा प्रतीत होता है कि वराहमिहिर ब्राह्मणों का पक्ष लेते हैं, क्योंकि वह इसी वर्ण के थे तथा इस वर्ण से अपने को अलग नहीं कर पाये। कुल मिलाकर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वह दृढता से सत्य के आधार पर टिके हुए हैं और वह स्पष्टतया सत्य का प्रतिपादन करते हैं।"

वराहमिहिर एक महान् और विख्यात हिन्दू खगोलविद् तथा ज्योतिर्विद् थे। उनका 'पंचसिद्धान्त' भारतीय खगोल विज्ञान का एक रोचक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ है। यद्यपि उनके कतिपय विचार या तो सही नहीं थे या उनके बहुत से लेखन में हमें शुद्ध फलित ज्योतिष को छिपाने वाले परम्परात्मक धार्मिक विचार भी मिलते हैं। फिर भी मेरी सम्मति से इन विचारों के लिए उस धार्मिक और सामाजिक परिवेश को, जिसमें उन्होंने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया, समझे बिना उन्हें दोष देना अन्यायपूर्ण होगा। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों में संसार के बारे में ऐसी धारणाएँ निहित थीं जो वैज्ञानिक खगोल के बिलकुल ही विपरीत थीं, किन्तु फिर भी लोग इन ग्रंथों के अनुसार ही संचालित होते थे। सम्राट् और जनता दोनों ही ज्योतिषयों का अत्यधिक सम्मान करते थे और ज्योतिषी इस सम्मान को छोड़ना नहीं चाहते थे, अतः उन्हें अपने विचारों को उस समय के धार्मिक विश्वासों के अनुरूप ही ढालना पड़ता था। परिणामतः तथ्यात्मक तथा परम्परात्मक विचार आपस में मिल जाते थे और यही मिश्रण अब हमें पर्याप्त वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता।

कृषि

खगोल विज्ञान और फलित ज्योतिष के अतिरिक्त, वराहमिहिर ने अपनी कृति 'वृहत्संहिता' में एक खंड कृषि (वृक्षायुर्वेद) पर भी लिखा है। उन्होंने भूमि को मुलायम बनाने तथा बीज बोने अथवा पौधों को लगाने की विधियों का वर्णन किया है। अच्छे फूल और फल लगने के लिए सर्व-प्रथम एक अत्यधिक खादयुक्त भूमि होना अनिवार्य है और उन्होंने खाद बनाने के सूत्र-रूप में एक मिश्रण का सुझाव दिया है। तिल, बकरी अथवा भेड़ की मेंगनियों, जौ का आटा तथा मांस को जल में मिलाकर सात दिन पड़े देने रहने पर यह खाद तैयार हो जाता है। उसे पौधों की जड़ों के चारों ओर डाल दिया जाता है।

दूसरी अनिवार्यता बोने से पहले बीजों की तैयारी है। यह कार्य चिक-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाई लगी हथेलियों में बीजों को लेकर दूध में डालकर किया जाता है। फिर अगले दिन चिकनाई लगी उँगलियों से बीजों को दूध में से निकाल कर एक-एक बीज को अलग-अलग कर लिया जाता है। यही प्रक्रिया लगातार दस दिन तक दोहरायी जाती है। फिर बीजों पर गोवर मला जाता है। हिरन अथवा सुअर के मांस को एक बर्तन में पकाया जाता है और उन बीजों को इस बर्तन से निकलने वाली भाप लगायी जाती है। फिर बीजों को उस मांस के साथ ही पहले से तैयार की गयी भूमि पर बो दिया जाता है। उन पर नित्य पानी छिड़का जाता है।

यदि पौधे के तने और पत्तियों की अधिक वृद्धि करने का विचार हो तो बीजों को पिसे हुए धान, एक दाल (माश), तिल, जौ तथा सड़ते हुए मांस के निषेचन में भलीभाँति डुबोया जाता है तथा हल्दी की भाप लगायी जाती है। फिर बीजों को धूप में सुखाया जाता है। और यही प्रक्रिया 30 दिन तक दोहरायी जाती है। तब वे बीज बोने के लिये तैयार होते हैं।

तत्पश्चात भूमि में एक हाथ व्यास का तथा दो हाथ गहरा एक गोल गढ़ा खोदा जाता है और उसे तैयार किये गये तरल खाद से भर दिया जाता है। गढ़े के सूख जाने पर इसमें आग लगा दी जाती है। फिर राख को घी और शहद में मिलाकर इसे भूमि पर लेप दिया जाता है। इस पर तीन इंच मिट्टी की तह लगाकर इसके ऊपर सेम, तिल और जौ के चूर्ण को बिछाकर उस पर फिर तीन इंच मिट्टी डाली जाती है। अन्त में मछली की छीलन छिड़क दी जाती है। इस क्रिया से पौधे की शाख और पत्तियाँ इतनी अधिक निकलती हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। भारत में बहुत से स्थानों पर उक्त कार्य-विधि का अब भी प्रयोग होता है और इसके परिणाम भी अच्छे होते हैं।

छोटे पौधों को रोपने के लिये वराहमिहिर ने सुझाव दिया कि इन्हें पहले जल में स्नान करा लेना चाहिये। आकाश के विविध नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है जिनके प्रभाव में पौधों को रोपने से वे और अधिक फलते-फूलते हैं। जिन पौधों में शाखा और पत्तियाँ विकसित न हुई हों, उन्हें जनवरी और फरवरी में तथा जिनमें केवल शाखा फूटी ही हो उन्हें नवम्बर और दिसम्बर में तथा जिनकी शाखा पर्याप्त विकसित हो चुकी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हो उन्हें जून और जुलाई मास में रोपने की सिफारिश की गयी है।

उन वृक्षों के नाम भी दिये गये हैं जिन्हें केवल कलम लगाकर ही उपजाना चाहिये। रोपण को अपेक्षाकृत एक श्रेष्ठ विधि बताया गया है। रोपण एक पौधे की कलम को दूसरे पौधे की जड़ अथवा तने पर लगाकर किया जाता है। कलम और पैबंद को गोबर से लीप दिया जाता है।

प्रत्यारोपण के लिए पौधों को जड़ से लेकर ऊपर तक शुद्ध घी, तिल के तेल, शहद, दूध और गोबर से लीपा जाता है। दो पौधों के बीच उपयुक्त दूरी रखी जाती है ताकि उनकी जड़ें आपस में मिल न जायें। जड़ों के मिलने से पौधों के कार्यकलाप में दोष आ जाता है और वृक्ष फल नहीं देते। वृक्षारोपण के पश्चात उन्हें ग्रीष्म ऋतु में सुबह-शाम, शरद ऋतु में केवल शाम को तथा वर्षा ऋतु में भूमि सूखी होने की दशा में पानी दिया जाता है। नीम जैसे वृक्षों को घरों के लिए कल्याणकारी बताया है।

मौसम का प्रभाव

बहुत अधिक अथवा कम ताप तथा शुष्क हवा के कारण वृक्षों में रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके फलस्वरूप उनकी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, कलियों का विकास नहीं होता, वृद्धि रुक जाती है तथा शाख सूख जाती हैं, आदि-आदि। इस प्रकार की विपत्तियों से बचाव का एक सामान्य रोग-निरोधक उपाय यह बताया है कि वृक्ष की जड़ों पर घी और विडंग से गूँधी हुई मिट्टी को लगा देना चाहिए और जड़ों के चारों और पतले किये गये दूध को छिड़क देना चाहिए।

वराहमिहिर कहते हैं कि शुष्क क्षेत्र में पौधों की वृद्धि से भूमि के नीचे जल विद्यमान होने का संकेत मिलता है। पौधों के सावधानीपूर्वक किये गये प्रेक्षण से आने वाली वर्षा अथवा सूखे का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शून्य को उसका पद दिलाने वाले :

ब्रह्मगुप्त

प्राचीन काल से ही भारत में महान् गणितज्ञ जन्म लेते रहे हैं। इन गणितज्ञों के मौलिक योगदान ने पूरे संसार में मानवज्ञान की इस शाखा की नींव डाली। दो प्रारम्भिक गणितज्ञ—ज्योतिर्विद् आर्यभट्ट और वराहमिहिर के पश्चात ब्रह्मगुप्त हुए, जिन्हें बाद में अलबेरुनी ने भारत का सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ गणितज्ञ माना।

ब्रह्मगुप्त जिष्णु के पुत्र थे तथा इनका जन्म पंजाब में मुल्तान के निकट भिल्लमाल नगर में 598 ई० में हुआ था। भिल्लमाल (आधुनिक भिन्न-माल) उस समय संभवतया उत्तरी भारत में गुर्जर राज्य की राजधानी था। यशस्वी गुप्त-साम्राज्य के पतन के पश्चात यद्यपि सांस्कृतिक और साहित्यिक उन्नति तो जारी रही फिर भी उस समय भारत की अशान्त राजनीतिक स्थिति के कारण निश्चय ही इस क्षेत्र में अवनति शुरू हो गयी थी।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त

गणित और खगोल के अपने ज्ञान तथा इस विषय में स्वयं के मौलिक योगदानों के आधार पर ब्रह्मगुप्त ने 628 ई० में छाप वंश के राजा व्याघ्र-मुख के संरक्षण में 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त (स्फुट का अर्थ है संशोधित) नामक ग्रंथ की रचना की। इस समय उनकी आयु 80 वर्ष की थी। यह सिद्धान्त ब्राह्म अथवा पितामह सिद्धान्त नामक एक अत्यन्त प्रारम्भिक सिद्धान्त पर

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आधारित प्रकट होता है, जो उस समय अप्रचलित हो चुका था, क्योंकि इसके कथन तथा गणना तत्कालीन अधुनातन जानकारी से मेल नहीं खाती थी।

ब्रह्मगुप्त द्वारा अपने जीवन के उत्तरकाल 665 ई० में 'करण खंड खाद्यक' नामक एक अन्य ग्रंथ की भी रचना की गई लगती है।

पश्चिमी भारत में ब्रह्मगुप्त का अत्यधिक प्रभाव था।

'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' में ब्रह्मगुप्त ने बीजगणित, अंकगणित, ज्यामिति तथा खगोल का विवेचन किया । उन्होंने इन विषयों पर केवल अपने मौलिक विचारों और योगदान का ही उल्लेख नहीं किया, अपितु इनकी तुलना प्रारम्भिक गणितज्ञों के तथा विभिन्न पुराणों में चर्चित विचारों से भी की है। अतः उनकी कृति इन क्षेत्रों में पर्याप्त ऐतिहासिक रुचि की भी है।

शून्य की धारणा एवं बीजगणित

यद्यपि हमें यह अजीब ही लगेगा, किन्तु यह सत्य ही है कि प्रारम्भिक गणितज्ञों को शून्य की धारणा तथा इसके नाना प्रकार के प्रयोगों का स्पष्ट ज्ञान नहीं था। बीजगणित सम्बन्धी कुट्टकाध्याय में ब्रह्मगुप्त ने सर्वप्रथम शून्य और इसकी संक्रियाओं का वर्णन किया है। उन्होंने यह प्रमाणित किया था कि शून्य को किसी ऋणात्मक अथवा धनात्मक राशि अथवा शून्य से घटाने पर क्रमशः ऋणात्मक, धनात्मक अथवा शून्य प्राप्त होता है। शून्य को किसी ऋणात्मक अथवा धनात्मक राशि अथवा शून्य से गुणा करने पर केवल शून्य ही आता है। किन्तु उन्होंने यह गलत कहा है कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर भी शून्य आता है, क्योंकि हम अब यह जानते हैं कि विभाजन का परिणाम कोई भी अनिर्धार्य राशि हो सकती है।

अनिर्धार्य समीकरण

द्वितीय घात के अनिर्धार्य समीकरणों को हल करने की अपनी विधि के लिए ब्रह्मगुप्त सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में वह आर्यभट्ट से भी बढ़े हुए थे। उन्होंने विविध प्रकार के साधारण तथा द्विघाती समीकरणों

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

को हल करने के नियम भी बताए हैं। उन्हें बीजगणित का केवल उच्च ज्ञान ही प्राप्त नहीं था अपितु उन्होंने गणित ज्योतिष की विभिन्न समस्याओं को हल करने में इस ज्ञान का उपयोग भी किया। शायद संसार में वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने गणित-ज्योतिष की गणना में बीजगणित का प्रभावपूर्ण उपयोग किया। इस रीति से उन्होंने तथा परिवर्ती भारतीय गणितज्ञों ने गणित-ज्योतिष के परिकलन को पूर्णता की ऊँची श्रेणी में पहुँचा दिया।

बीजगणित के विज्ञान की प्रशंसा में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, "जिस प्रकार सूर्य तारों को अस्पष्ट कर देता है, इसी प्रकार निपुण व्यक्ति किसी जन-सभा में बीजगणित की समस्याओं को हल करके अन्य खगोलविदों की महिमा को धूमिल कर देता है।"

अङ्कगणित

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अंकगणित-सम्बन्धी अध्यायों (गणिताध्याय) में, ब्रह्मगुप्त ने अंकगणित की बीस संक्रियाओं का वर्णन किया है जिसमें से कुछ हैं—संकलन (योग), व्यवकलन (घटाना), गुणन, विभाजन, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न, समानयन के पांच नियम, तीन, पांच, सात, नौ और ग्यारह पदों के नियम तथा वस्तुविनिमय। उन्होंने मिश्रण, श्रेढी, समतल आकृति, खुदाई, माल, आरा टीला और छाया-सम्बन्धी आठ प्रकार के प्रश्नों के हल का वर्णन भी किया है।

ज्यामिति

ब्रह्मगुप्त ज्यामिति में अधिक पारंगत नहीं थे। उन्होंने समकोण तथा आवर्ती चतुर्भुज के गुणों समेत वृत्त के निर्मेयों तथा उनके हल का वर्णन किया। उन्होंने वृत्त के व्यास के साथ परिधि के अनुपात का मूल्य 10 बताया। यह मूल्य आर्यभट्ट द्वारा बताए गए मूल्य की अपेक्षा कम सही था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

खगोल विज्ञान

खगोल के क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त का ज्ञान तथा योगदान महत्त्वपूर्ण होने पर भी उनके पूर्वाग्रहों के कारण धूमिल पड़ गया है। अपने ग्रंथ में उन्होंने अपनी खगोलीय पद्धति के सिद्धान्तों का वर्णन किया तथा इसमें विभिन्न ग्रहों की गति एवं स्थिति, उनके उदय और अस्त होने, उनके संयोग, चन्द्र और सूर्य ग्रहणों की गणना तथा बहुत-सी अन्य समस्याओं का उल्लेख भी है। पृथ्वी की आकृति के बारे में विभिन्न पुराणों में व्यक्त विचारों की ब्रह्मगुप्त ने आलोचना की है जिनमें कहा गया है कि पृथ्वी चपटी है अथवा एक प्याले की भाँति खोखली है। उन्होंने कहा है कि पृथ्वी का आकार गोल है और इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने कई प्रमाण दिए जैसे कि तारे भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न समय पर उदय और अस्त होते हैं। उन्होंने आगे कहा है कि खगोल की सभी गणना केवल तभी सही बैठती है जब हम उक्त तथ्य को स्वीकार कर लें।

उन्होंने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति (गुरुत्वाकर्षण) का प्रेक्षण किया और कहा कि सभी भारी पदार्थ प्रकृति के नियमानुकूल पृथ्वी पर आ गिरते हैं। वस्तुओं को आकर्षित करने और रखने का गुण पृथ्वी के स्वभाव में है, ठीक उसी प्रकार जैसे जल के स्वभाव में बहना है।

किन्तु उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया कि पृथ्वी परिभ्रमण करती है और वराहमिहिर के साथ सहमति प्रकट की कि 'यदि ऐसा होता तो पक्षी अपने घोंसले से पश्चिम की ओर उड़ते ही तत्काल अपने घोंसले पर वापस आ ही नहीं पाता।'

प्रमुख उपलब्धियाँ

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ब्रह्मगुप्त की प्रमुख उपलब्धियाँ बीजगणित के क्षेत्र में थीं। इस क्षेत्र में उन्होंने आर्यभट्ट के प्रारंभिक कार्य को आगे बढ़ाया।

खगोल क्षेत्र में उन्होंने आर्यभट्ट से असहमति प्रकट की, उनकी आलोचना की तथा गलत रूढिवादी धारणाओं का समर्थन किया, विशेष रूप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

से पृथ्वी के परिभ्रमण न करने तथा ग्रहणों के कारण के बारे में। इन ग़लत धारणाओं का उन्होंने समर्थन क्यों किया, इस बारे में निश्चय के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा तो नहीं है कि उन्हें सत्य का ज्ञान न रहा होगा। इस परिप्रेक्ष्य में उनके बारे में अलबेरुनी की निम्न टिप्पणी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अलबेरुनी ने लिखा है : "किन्तु ब्रह्मगुप्त को देखिये जो निश्चय ही उनके (भारतवासियों के) खगोलविदों में सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ हैं। वह सत्य से कतरा कर ढोंग का समर्थन करते हैं। ब्रह्म-गुप्त उन व्यक्तियों में से एक हैं जिनके बारे में परमात्मा कहता है, इन्होंने शरारत और अहंकार के कारण मेरे चमत्कारों को अस्वीकार किया है यद्यपि दिल से वह इन चमत्कारों से स्पष्ट रूप में परिचित थे।"

यह बात भी याद रखने योग्य है कि ब्रह्मगुप्त के समय में खगोल-विज्ञान ब्राह्मण धर्म से बहुत अधिक मिश्रित था और उस समय का धर्म खगोल की रूढिवादी व्याख्याओं में विश्वास करता था। उन विचारों की अस्वीकृति को धर्म का अनादर समझा जाता था। यह संभव है कि ब्रह्म-गुप्त पुरोहितों तथा उस राजा के, जिसके संरक्षण में उन्होंने अपने सिद्धांत की रचना की, प्रभावाधीन थे और साहस कम होने के कारण वह उस प्रभाव के अन्तर्गत नतमस्तक हो गये और रूढिवादी विचारों का समर्थन किया। प्राचीनकाल में इसी प्रकार की घटनाएँ पर्याप्त उपलब्ध हैं, उन देशों में तो और भी अधिक जहां ईसाई धर्म की सत्ता सर्वोच्च थी।

अरबी में अनुवाद

बगदाद की यात्रा पर गये एक भारतवासी के माध्यम से अरब-वासियों को ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त का परिचय 771 ई० में हुआ। इस पुस्तक को अरबवासी 'सिन्ध-हिन्द' नाम से पुकारते थे। इस ग्रंथ से अरबवासियों ने इस्लामी चान्द्रवर्ष के लिए अंगीकृत खगोलविज्ञान की तालिकाओं की गणना-हेतु तत्वों तथा विधियों को ग्रहण किया।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महान् बीजगणितज्ञ :

भास्कर

भारत में अतिप्राचीन काल से गणित के अध्ययन का पोषण होता रहा है। विभिन्न शुल्वसूत्रों में वर्णित वैदिक काल में बनी विविध प्रकार की वेदियों की ज्यामितीय आकृतियों से हमें उस युग के भारतीयों द्वारा समझे जाने वाले गणित-सिद्धांतों की जानकारी मिलती है। यजुर्वेद में उपलब्ध अंकों के दशमलव रूप में मेधातिथि द्वारा परिगणन को, जिसके आधार पर परिवर्ती भारतीय विद्वानों ने अंक लिखने की स्थान-मूल्य पद्धति का निर्माण किया, गणित के क्षेत्र में महानतम आविष्कार समझा जाता है। उत्तर-ब्राह्मण-काल में और उसके पश्चात् भी विद्वानों के अध्ययन के पाठ्य-क्रम में एक विषय—गणित भी होता था। आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त की कृतियाँ गणित के अध्ययन में तथा बीजगणित क्षेत्र में तो और भी अधिक की गई अभूतपूर्व प्रगति को प्रमाणित करती हैं। इस प्रगति को 12वीं शताब्दी में भास्कर के कार्य ने और आगे बढ़ाया।

भास्कर ने बीजगणित के क्षेत्र में बहुत-सी खोजों का पूर्वानुमान कर लिया। इसके फलस्वरूप उनके कार्यों से केवल 17वीं और 18वीं शताब्दी के पश्चात् ही यूरोप के बीजगणितज्ञ आगे बढ़ सके।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

भास्कर के पिता का नाम महेश्वर था। भास्कर का जन्म आधुनिक महाराष्ट्र राज्य में सह्याद्रि पहाड़ियों में स्थित विज्जडविड् में 1114 ई०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में हुआ। भास्कर के पिता ने ही उन्हें गणित की शिक्षा दी जो स्वयं एक गणितज्ञ थे। भास्कर के पुत्र लक्ष्मीधर तथा उनके पौत्र गंगदेव भी खगोल-विद् एवं गणितज्ञ थे। भास्कर ने अपने महान् ग्रंथ 'सिद्धान्त शिरोमणि' की रचना 1150 ई० में की। उस समय इनकी आयु केवल 36 वर्ष की थी। उनकी एक अन्य कृति का नामकरण—'कटुहल' है, इसकी रचना उन्होंने 69 वर्ष की आयु में सन् 1183-84 ई० में की।

वह काल जिसमें भास्कर रहे, मुस्लिम आक्रमणों और इस्लाम के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण भारत में आमतौर पर सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में पतन और ह्रास का युग था। किन्तु 'सुदूर'-दक्षिण और पश्चिम भारत में हिन्दू राज्य उस समय भी शक्तिशाली थे, अतः उस क्षेत्र में यह अवनति अपेक्षाकृत कम थी।

सिद्धांत शिरोमणि

'सिद्धांत शिरोमणि' एक वृहत् ग्रंथ है। यह निम्न चार भागों में विभाजित है—पतिगणित अथवा लीलावती में सामान्यतया अंकगणित का विवेचन है, बीजगणित में बीजगणित का, गृहगणिताध्याय और गोलाध्याय दोनों में ही ग्रहों की गतियों तथा वृत्त-संबंधी गणनाओं की चर्चा है।

लीलावती

यह 'सिद्धांत शिरोमणि' का पहला भाग है तथा इसमें 278 पद्य हैं। लीलावती भास्कर की पुत्री का नाम था, जिसे यह पुस्तक समर्पित की गई थी। यह पुस्तक अनिवार्यतः आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ला और श्रीधर आदि सरीखे प्रारंभिक विद्वानों की कृतियों पर आधारित है। इसमें मुख्यतः अंकगणित का वर्णन है। यह पुस्तक उस समय प्रचलित भार और माप की इकाइयों के वर्णन से प्रारंभ होती है तथा इसमें अंकगणित की बीस संक्रियाएं दी हुई हैं जो इस प्रकार हैं : संकलन (योग), व्यवकलन, गुणन, विभाजन, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न समानयन के पाँच नियम, तीन (प्रत्यक्ष और विलोम), पांच, सात, नौ, ग्यारह पदों के नियम तथा वस्तु-विनिमय। इसके पश्चात इस में अंकगणित की निम्न आठ सारणियों का विवेचन है :

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मिश्रण, श्रेढी, समतल आकृतिक, खुदाई, भंडार, आरा, अनाज के ढेर तथा शंकु की छाया। इसके अतिरिक्त इसमें द्वितीय घात की अनिधार्य समीकरणों, त्रिभुजों, चतुर्भुजों, वृत्तों के क्षेत्रफल तथा गोलक, शंकु, पिरामिड आदि के घन-संबंधी प्रश्न भी दिए हुए हैं। उदाहरणस्वरूप इसके कुछ प्रश्न नीचे दिये हैं।

उदाहरणात्मक प्रश्न

1. *प्रतिलोमन का प्रश्न :* एक तीर्थयात्री ने अपनी राशि का आधाभाग प्रयाग में, शेष का $\frac{2}{9}$ काशी में, फिर शेष का $\frac{1}{4}$ भाग सड़क-कर के रूप में दे दिया। जो बचा, उसका $\frac{6}{10}$ गया में देकर उसके पास 63 निषक शेष रहे। मुझे बताओ कि उस पर शुरू में कितनी राशि थी ?

2. *द्विघाती समीकरण का प्रश्न :* हंसों के एक समूह में हंसों का एक जोड़ा जल पर क्रीड़ा करता रह गया। उस जोड़े ने देखा कि दिशापरिवर्तन से थक कर कुल समूह के वर्गमूल के आधे के सातगुने हंस किनारे की ओर बढ़ रहे हैं, प्यारी लड़की, मुझे यह बताओ कि समूह में कितने हंस थे ?

3. *वर्गों से संबंधित प्रश्न :* पृथापुत्र (अर्जुन) ने युद्ध में उत्तेजित होकर कर्ण का वध करने के लिये वाणों का एक तरकश फेंका। अपने आधे वाणों से अपनी रक्षा की, समस्त वाणों के वर्गमूल के चार गुने वाणों से उसने कर्ण के घोड़ों को मार दिया, छः वाणों से उसने शल्य का वध किया और तीन वाणों से कर्ण के छत्र, ध्वज और कमान को ध्वस्त किया और एक बाण से अपने शत्रु के सिर को उड़ा दिया। अर्जुन ने कुल कितने बाण फेंके ?

4. *समकोण त्रिभुज का प्रश्न :* एक सौ हाथ ऊँचे वृक्ष से एक बन्दर नीचे उतर 200 हाथ दूर स्थित एक तालाब तक गया। दूसरा बन्दर वृक्ष पर से किसी अन्य ऊँचाई से लांघकर तेज़ी से विकर्ण के सहारे उसी स्थान पर गया। यदि दोनों वन्दरों द्वारा तय की गई दूरी समान हो तो ऐ विद्वान व्यक्ति, यदि तूने गणित का परिश्रम से अध्ययन किया है, मुझे शीघ्रता से यह बता कि दूसरा वन्दर किस ऊँचाई से कूदा ?

5. *समकोण त्रिभुज का प्रश्न :* एक स्तम्भ की जड़ में साँप का बिल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बना हुआ है तथा एक मोर उसकी चोटी पर बैठा है। स्तम्भ की ऊँचाई से तीन गुने फासले पर साँप को बिल की ओर आते देख कर मोर उस पर तिरछा झपटा। झटपट यह बताओ कि ये दोनों सांप के बिल से कितने हाथ दूरी पर मिले, यदि उन दोनों ने समान फासला तय किया हो ?

बीजगणित

'एलजैबरा' को हिन्दी में बीजगणित कहते हैं। 'बीज' का अर्थ है विश्लेषण तथा 'गणित' का अर्थ है 'गणना', अतः बीजगणित का अर्थ हुआ विश्लेषणात्मक गणना। भास्कर के बीजगणित में 213 पद्य हैं तथा यह हिन्दू बीजगणित की पूर्ण तथा क्रमबद्ध व्याख्या है। इसमें शून्य के परि-कलन तथा ऋणात्मक और धनात्मक अंकों तथा राशियोंकी धारणा-संबंधी नियमों का वर्णन है। इसमें लिखा है : "किसी राशि में शून्य जोड़ने अथवा घटाने से संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता। किसी राशि को शून्य से गुणा करने पर अथवा शून्य को किसी राशि से गुणा करने पर गुणनफल शून्य ही आयेगा। शून्य को किसी राशि से विभाजित करने पर भागफल शून्य आयेगा। किन्तु शून्य द्वारा विभाजित किये जाने पर कोई भी राशि अनन्त हो जाती है। अनन्त में कुछ भी जोड़ने अथवा उसमें से घटाने पर उसमें कोई भौतिक परिवर्तन नहीं आता, क्योंकि अनन्त तथा निर्विकार परमात्मा में संसार की सृष्टि और विनाश के समय में कोई भी परिवर्तन होता ही नहीं, यद्यपि प्राणियों के अत्यधिक क्रम जन्म लेते हैं अथवा मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अनिर्धार्य समीकरणों के प्रश्नों को हल करने की योग्यता ही भास्कर की प्रबलतम शक्ति थी। यद्यपि इनमें से बहुत से प्रश्न पूर्ववर्ती लेखकों से गृहीत किए गये थे, फिर भी द्वितीय घात के अनिर्धार्य समीकरणों के क्षेत्र में भास्कर द्वारा की गयी उन्नति उनके पूर्ववर्तियों से कहीं अधिक थी। इस प्रकार के प्रश्नों को भास्कर ने बीजगणित और ज्यामिति दोनों के द्वारा ही हल किया। उदाहरणस्वरूप कुछ प्रश्न नीचे दिये जा रहे हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उदाहरणात्मक प्रश्न

1. कौनसी संख्या 3 से गुणा करने तथा गुणनफल में 1 जोड़ने पर एक घन वन जाती है और घनमूल के वर्ग को 3 से गुणा कर 1 जोड़ने पर वर्ग बन जाती है ?

2. वह संख्या क्या होगी जिसे छः से भाग देने पर 5, पाँच से भाग देने पर 4, चार से भाग देने पर 3 और तीन से भाग देने पर 2 बचता है ?

3. यदि तू मुझे ऐसी दो संख्या बता दे जिनके घनों का योग एक वर्ग हो तथा उनके वर्गों का योग एक घन हो, तो मैं तुझे एक महत्वपूर्ण गणितज्ञ स्वीकार कर लूंगा ।

4. ऐ विद्वान बीजगणितज्ञ, पूर्णसंख्याओं के ऐसे विविध जोड़े बताओ जिनका अन्तर एक वर्ग हो और उनके वर्गों का योग एक घन हो ।

5. दो ऐसी संख्या बताइये जिनके वर्गों के योग तथा गुणनफल को जोड़ कर जो प्राप्त हो, उसका वर्गमूल तथा दोनों संख्याएं मिलकर 23 हो अथवा 537 । पूर्ण संख्याओं के ऐसे कई जोड़ बताओ । यदि तू इसे जानता है, तो पृथ्वी पर तुझसे अच्छा गणितज्ञ कोई और नहीं है ।

गणित के चिह्न

भास्कर के पूर्ववर्ती गणितज्ञों को बीजगणित के चिह्नों का ज्ञान नहीं था । और वे शब्दों तथा वाक्यों पर बुरी तरह निर्भर रहते थे । भास्कर ने संक्षिप्त अंकन में पर्याप्त प्रगति की । पूर्ण शब्दों के प्रारंभिक प्रयोग तथा अकेले अक्षरों के आधुनिक प्रयोग के बीच अन्तर्वर्ती अवस्था के रूप में भास्कर ने संकेताक्षरों का प्रयोग किया, किन्तु गुणन, समानता और असमानता के चिह्न उस समय तक विकसित नहीं हो पाये थे । भाजक को भाज्य के नीचे लिखा जाता था, किन्तु दोनों के बीच रेखा नहीं खींची जाती थी। समीकरण का एक पद दूसरे के नीचे लिखा जाता था तथा स्पष्टीकरण के लिये शाब्दिक संदर्भ दिया जाता था ।

खगोल विज्ञान

'सिद्धांत शिरोमणि' के ग्रहाणिताध्याय में भास्कर के खगोल का वर्णन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है, जो सूर्य सिद्धांत पर आधारित था। इसी के आधार पर उन्होंने वायु और वायुमंडल की लहरों में स्पष्ट अन्तर करते हुए वायु को ग्रहों की गति का कारण माना है। उन्होंने अधिचक्रों के सिद्धांत के विकास द्वारा ग्रहों के परिभ्रमण की व्याख्या की है तथा देशान्तरों में दिन से छोटी अवधि में परिवर्तन का ध्यान रखकर सूर्य की गति का विश्लेषण किया है (न कि अपने पूर्ववर्तियों की तरह देशांतरों के दिन-भर के अंतर को ध्यान में रखकर) ताकि इसकी गति लघु अन्तरालों के दौरान एक समान रहे।

गोलाध्याय में उन्होंने व्यास के साथ परिधि के अनुपात को मूल्य इस प्रकार दिया : "जब किसी वृक्ष के व्यास को 3927 से गुणाकर 1250 से भाग दिया जाता है तो भागफल परिधि के आसपास ही होता है।" गोले के क्षेत्रफल और आयतन की गणना करने की भास्कर ने निम्न विधि वतायी है : "वृत्त में, व्यास के चौथाई भाग को परिधि से गुणा करने से क्षेत्रफल निकल आता है। इसे 4 से गुणा करने पर गेंद के चारों ओर के तल का शुद्ध मूल्य निकल आता है। इसे अर्थात् गोले के तल को व्यास से गुणा कर तथा 6 से भाग देने पर गोले के आन्तरिक ठोस तत्त्व की सही मात्रा अथवा सही आयतन निकल आता है ?

फारसी में अनुवाद

1587 में महान् मुगल शासक, अकबर ने अबुलफजल से 'लीलावती' को फारसी में अनूदित कराया। इसके बाद अताउल्ला रुशुदी ने 1634 में वीजगणित का अनुवाद पूरा किया।

भास्कर, प्राचीन और मध्यकालीन भारत के महान् गणितविदों में अंतिम थे। परिवर्ती विद्वान आमतौर पर अपने पूर्ववर्ती लेखकों की कृतियों की टीका लिखने तक ही सीमित रहे। पुनर्जागरण-काल में उधर यूरोपीय देशों में प्राचीन विज्ञानों में नवजीवन फूंका जा रहा था तथा और आगे प्रगति और आविष्कार किए जा रहे थे किन्तु भारत विदेशी दासता में जकड़ा जा चुका था। अतः यहाँ केवल कोई भी प्रगति ही अवरुद्ध नहीं रही अपितु ख्यातिकर प्राचीन ज्ञान को भी भुला दिया गया।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महान् भारतीय कीमियागर :

नागार्जुन

सिन्धुघाटी सभ्यता अर्थात् ई० पू० 3000 से 2000 वर्ष की अवधि में भी भारत में रसायन और धातुविज्ञान का कुछ निश्चित ज्ञान विद्यमान था। खुदाई में मिले मिट्टी के रंगीन बर्तन, चमकीली मोहरें, मालाएं, ईंटें, सीमेंट, घरबार की तांबे और कांसे से बनी वस्तुएं तथा चांदी और सोने के आभूषण इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। बाद में ई० पू० 600 से शुरू होने वाले आयुर्वेदीय युग के दौर आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्रयोग हेतु जड़ी-बूटियों से औषधियों, वनस्पति अम्लों तथा क्षारों आदि को बनाने की दिशा में प्रगति हुई। आठवीं शताब्दी ई० से धातुओं के अधिकाधिक यौगिक तैयार किए गए तथा औषधियों के रूप में उनका प्रयोग हुआ। इन यौगिकों में सबसे महत्त्वपूर्ण पारे के यौगिक थे। इनका प्रयोग चिरस्थायी यौवन, अभेद्यता तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों को प्रदान करने वाला समझा जाता था। तांत्रिक मत नामक एक धार्मिक दर्शन की प्रेरक-शक्ति के अन्तर्गत इन यौगिकों का काफी प्रचलन हुआ। तांत्रिक मत पांचवीं अथवा छठी शताब्दी ई० में प्रकट हुआ किन्तु यह मत बुद्धधर्म के पतन के पश्चात ही महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ था। इस मत का 1300 ई० तक समाज पर पर्याप्त प्रभाव बना रहा। तांत्रिक मत ने कष्टों से मुक्ति तथा शरीर को अमर बनाने के लिए नाना-प्रकार के साधन प्रस्तुत किए। इन साधनों में शिव और उनकी सहधर्मिणी पार्वती की पूजा पर केन्द्रित कुछ विशेष अनोखे कर्मकांड करना तथा पारे के यौगिकों का प्रयोग भी सम्मिलित था। इस मत के उपफल स्वरूप

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कीमिया विज्ञान का विकास हुआ और इस विज्ञान में रुचि लेने वाले व्यक्तियों ने धर्मोत्साह के साथ इस विज्ञान का अनुशीलन किया। उन्होंने अपनी विधियों, प्रयोगों और प्रेक्षणों के प्रचार तथा प्रलेख हेतु विविध ग्रन्थों की रचना की। इन भारतीय कीमियागरों में नागार्जुन सर्वाधिक प्रसिद्ध थे।

उनका काल

नागार्जुन के जीवन के बारे में कुछ अधिक मालूम नहीं है। अलबेरुनी ने अपनी 'इन्दिका' में नागार्जुन नाम के एक व्यक्ति का उल्लेख किया है जो आधुनिक गुजरात राज्य में सोमनाथ के निकट दैहक दुर्ग का निवासी था तथा अलबेरुनी से लगभग एक शताब्दी पूर्व जीवित था। अलबेरुनी ने उसे रसायन अथवा कीमियागरी में महान सिद्धहस्त तथा एक ऐसी दुर्लभ पुस्तक का लेखक होने के बारे में लिखा है, जिसमें इस विषय पर लिखे गए संपूर्ण साहित्य का सार था। कीमियागरी पर एक प्रसिद्ध कृति, 'रसरत्नाकर' नामक ग्रन्थ की रचना नागार्जुन द्वारा की गई बताई जाती है। पुस्तक के भीतर उपलब्ध प्रमाणों से यह पुस्तक आठवीं शताब्दी ई० की प्रकट होती है। उक्त दोनों स्रोतों से यही संकेत मिलता है कि नागार्जुन आठवीं और दसवीं शताब्दी ई० के मध्य कभी हुए होंगे। उन कृतियों से यह प्रकट होता है कि वह बौद्धधर्मावलम्बी थे। यह भी बताया जाता है कि उन्होंने 'सुश्रुत संहिता' का संपादन और संशोधन भी किया, इसमें उत्तरतंत्र नामक अंश जोड़ा तथा उसे वह रूप दिया,जिस रूप में वहहमें आज उपलब्ध है। 'कक्ष-पुटतंत्र', 'आरोग्यमंजरी', 'यागसार', तथा 'योगशतक' नामक कतिपय अन्य ग्रन्थ भी नागार्जुन द्वारा रचित बताए जाते हैं। किन्तु 'रस रत्नाकर' को उनकी कृतियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध माना जाता है।

रस रत्नाकर

यह कीमिया से संबंधित पुस्तक है,जिसमें धात्विक यौगिकों—विशेष-रूप से पारे (रस) के यौगिकों के बनाने और उपयोग का वर्णन है। इसमें कुछ ऐसे नुस्खों का वर्णन है जिसमें वनस्पति अथवा जान्तव उत्पादों का

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्य धातुओं को ऐसे यौगिकों में बदल देने के लिए प्रयोग किया जाता है जो स्वर्ण की तरह दिखते हैं तथा उन्हें स्वर्ण कहकर चलाया जा सकता है। इन नुस्खों में कुछ के नीचे दिए गए वर्णन से हमें इनमें प्रयोग की गई कुछ तरकीबों की जानकारी मिलती है।

"कितने आश्चर्य की बात है कि सिरस (ऐल्बिज्जिया लेवेक) के रस के साथ मिला हुआ वैदूर्य एक नीला बहुमूल्य रस (एक सोडियम अल्मुनियम सिलिकेट जिसमें संयुक्त गंधक भी होती है) एक गुंज (रत्ती, एक प्रकार का बीज जिसका भार लगभग 1.9 ग्रेन होता है) चांदी को उसके भार के सौगुने में बदल लेता है, जिसकी चमक सूर्य के समान होती है।"

"कितना अनोखा है कि ब्यटिया मोनोस्पर्मा के रस से शुद्धीकृत पीली-गंधक लगी चांदी को उपलों की आंच पर तीन बार तपाने पर सोने में बदल जाती है।"

"कितना आश्चर्यजनक है कि वनस्पति अम्लों तथा भेड़ के दूध में कई बार घोटी जाने के पश्चात सिन्दूर (लाल मरक्यूरिक सल्फाइड) चांदी को केसर जैसी सोने की चमक प्रदान कर देता है।"

कुछ यौगिकों अथवा धातुओं के शुद्धीकरण का वर्णन इस प्रकार है :

"चपला (संभवतया कोई गंधकयुक्त खनिज) तथा अन्य खनिज तीन दिन नींबू के रस में डूबे रहने पर शुद्धीकृत हो जाते हैं।"

"पांच मिट्टियों, राख तथा लवण पोतकर सोने को तपाने से वह शुद्ध हो जाता है।"

"देखो ! किसे इस पर आश्चर्य नहीं होगा कि मिट्टी से निकाले गए क्षार, भेड़ का दूध, शुद्धीकृत मक्खन तथा अपने भार के सोलहवें अंश के बराबर तेल के साथ तांबे के पिघलाने पर तांबा बालचन्द्र की भांति शुद्ध हो जाएगा ?"

ज्ञान का स्रोत

नागार्जुन ने यह बताया है कि उन्हें पारे के उन विभिन्न यौगिकों को बनाने की जानकारी किस प्रकार प्राप्त हुई, जिन्हें अक्षुण्ण शारीरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"प्राणिमात्र के कल्याण हेतु मैंने दुष्कर 12 वर्ष तक सभी प्रकार की तपस्या की और वह (फाइकस बेंगालेन्सिस) पर राज्य करती हुई देवी यक्षिणी की पूजा की। तब मुझे एक देववाणी सुनाई दी : "अरे ! ऐ महा-मुनि ! जो कुछ भी तू चाहे, मैं तुझे सभी कुछ दूंगी।" इसका उन्होंने उत्तर दिया : "हे देवी ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो, तो मुझे पारे के यौगिकी-करण का दुर्लभ ज्ञान प्रदान करने की कृपा करो।"

तत्पश्चात नागार्जुन ने पारे के यौगिकीकरण की प्रक्रिया का वर्णन किया। "नीबू के रस, नौसादर (एमोनियम क्लोराइड), अम्ल, क्षार, पांचों लवण, छोटी पीपल, बड़ी पीपल, अदरक की सूखी हुई जड़, मोरिंगा टैरीशोस्पर्या के रस तथा ज़मींकन्द के ट्यूबर के साथ रसों के राजा पारे को खरल करने से पारा तुरन्त ही आठ धातुओं से मिश्रित हो सकता है।"

"जब पारा अपनी तरलता को त्यागकर विभिन्न रंगों का ग्रहण कर लेता है, तो इसे 'मृत' समझा जाता है। मृत' पारा वह होता है जिसमें तर-लता, गति तथा चमक का कोई चिह्न नहीं होता। उगते हुए सूर्य जैसा रंग और चमक प्राप्त किया हुआ पारा जब अग्नि-परीक्षण में खरा उत-रता है अर्थात शीघ्र ही वाष्पित नहीं होता तो इसे यौगिकीकृत समझा जाता है।"

"जीवन हेतु 'अमृत' को तैयार करने के लिए पारे को उसके बराबर सोने के साथ खरल किया जाता है और फिर इस सम्मिश्रण को गंधक, सुहागा आदि के साथ मिश्रित किया जाता है। तत्पश्चात इस मिश्रण को एक कुठाली में लौटकर उसका ढक्कन लगाकर उसे मृदु अग्नि में रख दिया जाता है। इस अमृत (अर्थात् ऊर्ध्वपातन) को खाने से शौकीन व्यक्ति का शरीर ऐसा हो जायेगा जिसके अपकर्ष होने का भय नहीं रहेगा।"

उपकरण

नागार्जुन ने गर्भ यन्त्रम् नामक एक उपकरण तथा पिश्टिक (पारे और गंधक की एक टिकिया) को राख बनाने की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है : "मिट्टी की एक कुठाली बनाओ, जिसकी लम्बाई और

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चौड़ाई में चार और तीन का अनुपात हो और जिसका मुंह गोल हो। बीस भाग नमक तथा एक भाग गुग्गुल लो और इन्हें वांछित जल के साथ खूब बारीक खरल कर लो। कुठाली पर इस मिश्रण का लेप करो। फिर इसे धान के भूसे की मद्धिम आंच में गर्म करो।"

भारत में तान्त्रिक मत की अवधि में कीमियागरी पर इस मत के कट्टरपंथियों ने लगभग इसी प्रकार की बहुत-सी पुस्तकों की रचना की किन्तु भारतीय कीमियाविज्ञान में नागार्जुन का व्यक्तित्व सर्वाधिक उत्कृष्ट है। वृन्द और चक्रपाणी-सरीखे परिवर्ती कीमियागरों ने नागार्जुन को इस विषय का विशेषज्ञ माना है तथा इन लेखकों की पुस्तकों में नागार्जुन की रचनाओं से बहुत अधिक उद्धरण लिए गए हैं।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एक महान् रसायनविद्

तांत्रिक मत के प्रभावकाल में मानव-शरीर को अमर बनाने के लिए रासायनिक सूत्र की खोज के फलस्वरूप रासायनिक यौगिकों—विशेषरूप से पारे के यौगिकों के सम्पाक से सम्बन्धित ढेर सारा ज्ञान एकत्रित हो गया। यद्यपि इन यौगिकों से वांछित ध्येय तो प्राप्त नहीं हुआ फिर भी इनमें से बहुत से यौगिक उपयोगी सिद्ध हुए, अतः उन्हें औषधि के रूप में प्रयोग किया गया। रासायनिक यौगिकों का सम्पाक-कार्य आमतौर पर आयुर्वेदिक चिकित्सकों के हाथ में था तथा उस काल के रसायन का मुख्य ध्येय औषधियां बनाना ही था जिन्हें नाना प्रकार के रोगों तथा अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था। 1300-1500 ई० के बीच विद्वानों ने बहुत-सी चिकित्सा-रसायन पुस्तकों की रचना की जिनमें इन यौगिकों के सम्पाक और उपयोग का उल्लेख किया गया है। यह वह काल था जब हिन्दू सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों का आमतौर पर अधःपतन हो चुका था, केवल सुदूर दक्षिण अथवा पश्चिम के कुछ प्रदेशों को छोड़कर जहां उस समय हिन्दू राज्य विद्यमान थे।

इस प्रकार की पुस्तकों में से एक, 'रसरत्न समुच्चय' की रचना लगभग 1300 ई० में हुई बताई जाती हैं। कुछ पुस्तकों में इस ग्रंथ का लेखक वाग्भट्ट को बताया गया है तथा अन्य पुस्तकों में अश्विनीकुमार अथवा नित्यानाथ को। इस पुस्तक की शैली से यह संकेत मिलता है कि लेखक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बुद्धमत के प्रभाव में था। इस पुस्तक के लेखक के अन्य विवरण उपलब्ध नहीं हैं।

रसरत्न समुच्चय

यह पुस्तक न्यूनाधिक रसायन की व्यवस्थित पुस्तक ही है। स्वयं लेखक के शब्दों में : "रोगों के उपचार में अनुभूत पारे के यौगिकों तथा खनिजों से सम्बन्धित इस पुस्तक का संकलन पूर्वोक्त विशेषज्ञों तथा अन्य व्यक्तियों की कृतियों को ध्यान में रखकर किया गया है। इसमें पारा, खनिज तथा धातुओं, उपकरणों के निर्माण, धातुओं के शुद्धीकरण के रहस्य-मय सूत्र, आसवों के निकर्षण (क्रियाशील सिद्धान्त), द्रवीकरण तथा भस्मी-करण का विवेचन किया जायेगा।" इसमें शिष्यों के चयन, प्रयोगशालाओं के निर्माण और स्थापना की संस्तुति भी की गई है तथा रासायनिक संक्रियाओं में प्रयोग किए जाने वाले नाना प्रकार के उपकरणों का वर्णन भी दिया गया है।

शिष्यों के चयन तथा दीक्षा के लिए इसमें कहा गया कि शिष्यों को अपने गुरु के प्रति श्रद्धालु, सदाचारी, सत्यनिष्ठ, परिश्रमी, आज्ञाकारी, दंभ और छल से मुक्त दृढविश्वासी होना चाहिए। प्रशिक्षक को स्वयं भी बुद्धिमान, अनुभवशील, रासायनिक प्रक्रियाओं में पारंगत, संयमी तथा शिव-पार्वती का भक्त होना चाहिए। भगवान शिव की स्तुति तथा पूर्ववर्ती कीमियागरों, उपकरणों तथा रसायनों के अभिनन्दन के पश्चात प्रशिक्षक को अपनी आंखें बन्द कर अपने शिष्यों को ज्ञान-दीक्षा देनी चाहिए। इस ज्ञान को पूर्णतया गुप्त रखा जाना चाहिए अन्यथा यह ज्ञान निष्फल हो जाता है।

प्रयोगशाला

प्रयोगशाला ऐसे प्रदेश में स्थित होने की सिफारिश की गई है जहां औषधीय जड़ी-बूटियां प्रचुरता से पैदा होती हैं। यह खूब खुली हुई हो, इसमें चार दरवाजे हों तथा यह देवताओं के चित्रों से सुसज्जित होनी चाहिए। जहां तक साज-सज्जा का सम्बन्ध है, भट्टियां दक्षिण-पूर्व में,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उपकरण दक्षिण-पश्चिम में, धोने आदि का प्रबन्ध पश्चिम में, सुखाने की व्यवस्था उत्तर-पश्चिम में होनी चाहिए। आसव-निकर्षण के उपकरण, जल-पात्र, धौंकनियां, हावन और दस्ते, छलनियां, कांच के बने भभके, कुठालियों के लिए मिट्टी, सूखे उपले, लोहे के कड़ाह, शंख इत्यादि को प्रयोगशाला में यथास्थान रखा जाना चाहिए।

उपकरण

विभिन्न रासायनिक संक्रियाओं के लिए प्रयोग में आने वाले उपकरण साधारण थे तथा इनमें अधिकांशतः भिन्न-भिन्न ढंगों से एक साथ मिट्टी के दो बर्तन सम्मिलित होते थे। इनमें से एक बर्तन में कच्ची सामग्री रखकर उसे गर्म किया जाता था तथा दूसरा बर्तन ग्राहक का कार्य करता था। इन उपकरणों को अलग-अलग नाम दिए गए थे।

ढोल-यंत्र में उबलते हुए द्रव से आधे भरे हुए एक बर्तन के मुँह पर एक छड़ रखी जाती है जिससे बर्तन में रसायन से भरी एक छोटी थैली लटकी रहती है तथा छोटे बर्तन के ऊपर एक अन्य उल्टा बर्तन रखा रहता है।

स्वेद्री यंत्र में और सब चीजें उक्त यंत्र की भांति ही होती हैं, अन्तर केवल इतना ही होता है कि औषधि निचले बर्तन के मुँह पर फैले हुए कपड़े पर रखी होती हैं।

पातन यंत्र आसवन के लिए प्रयोग होता था। इसमें उल्टे बर्तन का मुँह निचले बर्तन की गर्दन में फिट बैठा होता है, उनके किनारों को सील कर दिया जाता है। निचले पात्र में आसुत इकट्ठा होता है।

अधसपतन यंत्र में उल्टे बर्तन की भीतरी तली में रसायन को पोत दिया जाता है तथा इस बर्तन के बाहरी भाग को गर्म किया जाता है। इस प्रकार वाष्प अथवा अर्क निचले बर्तन में संघटित हो जाता है।

ढेकी यंत्र पारे के आसवन के लिए प्रयोग होता था। एक बर्तन को जिसमें पारा तथा अन्य उपादान होते हैं दूसरे पात्र की अपेक्षा ऊँचे तल पर रखा जाता है। दूसरा पात्र पीतल के दो अर्ध गोलाकार भागों से बना होता है तथा इसमें ठंडा जल भरा होता है और दोनों को एक खोखले बांस

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्वारा जोड़ा जाता है।

बालुका यंत्र पारे के यौगिक बनाने के लिए प्रयोग होता था। तीन-चौथाई भाग में रेत से भरे एक बर्तन को नीचे से गर्म किया जाता है। रेत के ऊपर एक लम्बी गर्दन वाला फ्लास्क रखा जाता है। जिसमें रसायन होते हैं तथा बाहरी ओर कपड़े और मिट्टी की पर्त चढ़ी होती हैं। इस फ्लास्क के ऊपरी सिरे पर एक बर्तन को उल्टा करके रख देते हैं। जब बाहरी बर्तन को गर्म किया जाता है, तो यह एक रेत ऊष्मक का कार्य करता है।

लवण यंत्र भी उक्त यन्त्र की तरह का ही होता है। केवल यही अंतर होता है कि इसमें रेत के स्थान पर लवण का प्रयोग किया जाता है।

तिर्यक् पातन यंत्र का प्रयोग औषधियाँ आदि के निकर्षण के लिए होता है। इसमें दो बर्तन एक नली द्वारा इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि वह बर्तन, जिसमें औषधियाँ होती हैं और जिसे गर्म किया जाता है, उस बर्तन की अपेक्षा ऊंचे तल पर होता है जिसमें आसुत इकट्ठा होता है।

धूप यंत्र को सोने या चाँदी के वरकों को धूम्रीकरण के लिए प्रयोग किया जाता था। इसमें एक बर्तन को नीचे से गर्म किया जाता है। इसमें रसायन होते हैं तथा इसमें इसकी गर्दन से कुछ नीचे लगी हुई लोहे की छड़ों पर उन धातुओं के वरकों को रखा जाता है। इस बर्तन के ऊपर एक दूसरा बर्तन उल्टा करके रखा होता है।

भस्मीकरण और तपाने के काम में आने वाली कुठालियाँ अलग-अलग आकार और आकृति की बनाई जाती थीं। इनके बनाने के लिए आमतौर पर ऐसी मिट्टी का प्रयोग करना बताया गया है जो भारी तथा पीले रंग की हो अथवा बांबी की मिट्टी होनी चाहिए। इस मिट्टी में धान को जला हुआ भूसा, सन (एक पौधा) के रेशे, काठ-कोयला तथा घोड़े की लीद मिलाई जाती थी।

औषध शास्त्र

प्रयोगशाला में साधारणतया विभिन्न लवण मिट्टियाँ, अम्ल, क्षार और घोलकों को रासायनिक अभिकर्मकों के रूप में प्रयोग किया जाता था।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लवण निम्न छः प्रकार के थे—समुद्र (समुद्र का नमक), सैन्धव (चट्टान का नमक), विदम, सौवर्चल, रोमक तथा चुलिका लवण (नौसादर)। पांच मिट्टियां थीं—ईंट, लालगेरू, लवणीय भंडार, राख तथा बांबी की मिट्टी। प्रयोग में आने वाले सभी अम्लों को विभिन्न फलों अथवा पौधों के अर्क से प्राप्त किया जाता था। उदाहरणस्वरूप गलगल और नींबू, इमली, अनार, पुटिकामय रूमैक्स, श्रगिल आवजैलिस, साइसट एरीटिनम (चना), जिजिफस जुजूवा (वेरी), ऐवरोहाआ केरमबोला (कमरख)। पोटाश के कार्वोनेट, सोडा के कार्बोनेट तथा सुहागा क्षार थे। अगलनीय धातुओं के संगलन में सहायता पहुंचाने के लिए चाशनी (राव) गुग्गुल, शुद्धीकृत मक्खन, शहद तथा सुहागे का घोल रूप में प्रयोग होता था।

औषधियों का वर्गीकरण

हिन्दू रसायन और औषधशास्त्र में खनिज जगत को मोटे तौर पर रस, उपरस, रत्न (जवाहरात) और लौह (धातु) वर्गों में विभाजित किया गया है। यद्यपि 'रस' शब्द साधारणतया पारे के लिये संरक्षित था, फिर भी यह किसी खनिज अथवा धात्विक लवण के लिए समान रूप से प्रयुक्त हुआ है। आठ 'रसों' के नाम इस प्रकार हैं—अभ्र (अभ्रक), वैक्रांत, मक्षिका (पाइराइट) विमल, शिलाजातु (विटूमन), शास्यक (नीलाथोथा), चपल (गंधकयुक्त खनिज) तथा रसक (कैलामाइन)। इन अलग-अलग रसों को अन्य अभिकर्मकों को साथ मिलाकर इस प्रकार गर्म किया जाता था कि रस 'मृत' हो जाता था और इसे औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था। "अभ्रक को 'मृत' करने के लिए इसे चावल के साथ मिश्रित कर वारीक पीस कर कपड़े के टुकड़े में बांध खटेट दलिये में लटका दिया जाता है और फिर कासुदा (केसिया सोफेरा) के रस से पुते हुए कपड़े में से छाना जाता है तथा एक बन्द कुठाली में दस बार तपाया जाता है।"

आठ उपरस हैं—गंधक, लाल गेरू, कसीस (लोहे का सल्फेट), फिटकरी, हरताल (लोहे का डाइसलफाइड), काजल, मैनशिल (आर्सनिक का डाई सल्फाइड) और कामकुण्ठ। इन्हें पारे के विभिन्न सम्पाक बनाने

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लिये प्रयोग किया जाता था। जिन विभिन्न (लौह) धातुओं अथवा उनकी मिश्र धातुओं का उल्लेख किया गया है वे हैं—सोना, चांदी, लोहा, सीसा, रांगा (टिन), जस्ता, कांसा और पीतल। पारे के साथ इनको, 'मृत' करके इनका प्रयोग औषधियों के रूप में किया जाता था और इसकी प्रक्रिया निम्न थी :

"एक भाग पारा, दो भाग गंधक तथा तीन भाग लौह चूर्ण लो और उन्हें भारतीय अगर (ऐलो) के रस में खरल करो और छः घण्टे बाद इस मिश्रण को पीतल के एक पात्र में लौटकर उसे एरंड की पत्तियों से ढंक दो। डेढ़ घण्टा समाप्त होने पर यह मिश्रण गर्म हो जायेगा। फिर इसे चावलों के ढेर के नीचे दबा दिया जाता है और तीनदिन बाद इसे निकाल-कर वहुत बारीक पीस कर कपड़े में छान लेते हैं। इस प्रकार लोहा पूरी तरह 'मृत' हो जाता है। सोना तथा अन्य धातुओं को भी इसी प्रकार द्वारा मृत किया जा सकता है।"

जस्ते का निकर्षण

'रसरत्न समुच्चय' में भारतीय रसायन के इतिहास में पहली बार कैलामाइन से जस्ते के निकर्षण के विविध ढंगों का उल्लेख है। सामान्य ढंग यह था : "कैलामाइन को हल्दी, हरीतकी, रेंज़िन (राल, विरोज़ा) लवणों, काजल, सुहागा तथा कैलामाइन के भार के चौथाई सेमीकार्पस-एनाकार्डियम (काजू) तथा अम्लरसों के साथ मलो। नलिका-कार कुठाली की भीतरी तह पर उक्त मिश्रण को लेप दो। इसे धूप में सुखा लो। उल्टा बर्तन रखकर इसके मुँह को बन्द करके गर्म करो। जब पिघले हुए कैलामाइन से निकलने वाली लौ का रंग नीले से सफेद हो जाए तो कुठाली को चिमटे से पकड़कर इसका मुँह नीचे की ओर कर इसे भूमि पर फेंक दिया जाता है। यह सावधानी बरती जाती है कि कुठाली का नलिकाकार सिरा न टूटे। रांगे (टिन) का चमक वाला जो अर्क टपकता है, उसे प्रयोग के लिए इकट्ठा कर लिया जाता है।"

उक्तोल्लेखित बहुत से रासायनिक सम्पाक आज भी आयुर्वेद औषध-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संग्रह का एक भाग हैं। 'रसरत्न समुच्चय' मध्यकालीन भारत में रसायन की स्थिति का एक अति निदर्शी चित्र प्रस्तुत करता है। दुर्भाग्यवश परिवर्ती शताब्दियों में और आगे कोई कार्य नहीं हुआ और फलस्वरूप इस क्षेत्र में वांछित सुधार और प्रगति संभव न हो सकी।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन युग के परमाणुवादी तत्त्वज्ञ-वैज्ञानिक :

कणाद

ई० पू० 600 से 200 ई० के बीच की अवधि प्राचीन यूनान की भाँति ही भारत में विभिन्न विचारों तथा विचारधाराओं के विकास के लिए उल्लेखनीय है। इस काल के महान् विचारकों ने मानवमात्र के समक्ष युग-युगों से उठे हुए प्रश्न के तर्कपूर्ण उत्तर देने का प्रयास किया। प्रश्न था, अपने चारों ओर विद्यमान ब्रह्माण्ड तथा सृष्टिकर्ता (परमात्मा) के साथ मनुष्य का क्या सम्बन्ध और ध्येय है? भारतीय विचारधाराओं और दर्शन में इस प्रश्न के प्रति विविध दृष्टिकोण उपलब्ध हैं। इनमें व्यक्त विचारों से प्राचीन विचारकों के सोचने के सुसंगत ढंग का आभास मिलता है, जिन्हें हम धर्म-दर्शन और विज्ञान कहते हैं। इन विचारों में इन तीनों के मध्य किसी भी प्रकार का सीमांकन नहीं है। ये विचार-धाराएं प्रकट करती हैं कि मूलभूत प्रश्न का हल खोजने के लिए इन सभी विषयों का किस प्रकार उपयोग किया गया। ज्ञान के विभिन्न पक्षों के इस सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप बहुत से विदेशी विद्वानों ने इनमें निहित वैज्ञानिक सिद्धान्तों को कोई महत्त्व न दिया, यद्यपि अब धीरे-धीरे इस प्रकार के सम्मिश्रण को मानव-जाति के लिए सर्वाधिक कल्याणकर प्रतीत किया जा रहा है। किन्तु जिन्होंने प्रारंभिक पूर्वग्रह से छुटकारा पा लिया है, वे अब यह निष्कर्ष निकालने लगे हैं कि इनमें निहित वैज्ञानिक सिद्धान्त किसी प्रयोगशाला में किए गए नियमित प्रयोगों पर आधारित न होते हुए भी विस्मयकारी रूप से आधुनिक दिखाई देते हैं तथा ध्यान दिए जाने योग्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हैं। प्राचीन तत्त्वज्ञ वैज्ञानिक कणाद आदि ने इस प्रकार के सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की है।

कणाद औलुक्य और कश्यप के नाम से भी जाने जाते थे। वह ऊलूक मुनि के पुत्र थे। वह इलाहाबाद में प्रभास नामक स्थान पर ई० पू० छठी शताब्दी के आस-पास रहे होंगे। वह सोम शर्मा के शिष्य थे। जिन्हें भगवान शिव का अवतार बताया जाता है। कणाद ने साधू का जीवन बिताया और अपने दैनिक भोजन हेतु वह सार्वजनिक सड़कों से अनाज इकट्ठा करते थे। इसी कारण उनका नाम 'कणाद', कणभुक अथवा कणभक्ष पड़ा, जिनका अर्थ होता है—'कणों से पेट भरने वाला व्यक्ति'। पौराणिक कथा के अनुसार उन्होंने इस प्रकार दुःसाध्य कष्ट उठाकर सर्वज्ञ भगवान शिव को प्रसन्न किया। भगवान शिव ने उन्हें संघटकों के बारे में ज्ञान प्रदान किया जिनसे इस ब्रह्मांड का निर्माण हुआ। शिवजी ने कणाद को उन सत्यों को मूर्तरूप देकर मानवजाति के कल्याण हेतु एक ग्रन्थ की रचना करने का आदेश दिया। इस प्रकार कणाद ने वैशेषिक सूत्रों की रचना की। यह वैशेषिक दर्शन की सर्वप्रथम क्रमबद्ध कृति है और इस दर्शन का अंतिम उद्देश्य है—ब्रह्माण्ड को भली-भांति समझकर आत्मा की मुक्ति।

परमाणु

कणाद के अनुसार इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु परमाणुओं से बनी हुई है। परमाणु वे वास्तविक तत्त्व हैं जिन्हें किसी वस्तु को तब तक विभाजित और उपविभाजित करने से प्राप्त होते हैं जब तक कि उसका और अधिक विभाजन असंभव हो जाए। भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं के अलग-अलग लक्षण होते हैं किन्तु एक-एक करके किसी भी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा उसका बोध नहीं हो सकता और मुक्त अवस्था में उसका अस्तित्व भी नहीं होता। वे शाश्वत और अविनाशी हैं। (उक्त विशेषताओं द्वारा अंग्रेजी भाषा का शब्द 'एटम' परमाणु का लगभग समानार्थी है)। परमाणु आपस में नाना प्रकार की रीतियों में संयुक्त हो जाते हैं और इन संयोगों द्वारा ही परमाणु ब्रह्माण्ड और हमें दिखाई देने एवं महसूस होने वाली सभी वस्तुओं का निर्माण करते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं और उनके विविध

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संयोगों के विशिष्ट लक्षणों (विशेष का अर्थ ही विलक्षणता, विशिष्टता होता है) के वृहद् विवेचन के कारण ही इस दर्शन को 'वैशेषिक' नाम दिया गया।

छः श्रेणी

कणाद के दृष्टिकोण में, जो कुछ भी इस ब्रह्माण्ड में है, मोटे तौर पर छः श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन श्रेणियों के नाम हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय अर्थात् संघटक भागों में घनिष्ठ सम्बन्ध।

इससे भी आगे, पदार्थों को नौ तत्त्वों में उपविभाजित किया जा सकता है, जिनके नाम हैं—क्षिति (भूमि), अप (जल), तेज, (अग्नि अथवा ऊष्मा), वायु (हवा), आकाश (ईथर), काल (समय), दिक् (अंत-रिक्ष), मन (मस्तिष्क) तथा आत्मा; (भूमि, जल और वायु शब्द सभी ठोस, तरल और गैसीय पदार्थों का अर्थ रखते हैं)। भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश में क्रमशः गंध, स्वाद, रंग, स्पर्श और ध्वनि के विशिष्ट तथा प्रभेदी गुण होते हैं। चार प्रकार के परमाणुओं से पहले चार पदार्थों की रचना होती है। आकाश, दिक् और काल अगोचर पदार्थ हैं, इनमें से प्रत्येक अनन्त तथा सर्वव्यापक है। परमाणुओं का संयोग और पृथक्कीकरण संसार की विविध वस्तुओं की उत्पत्ति और विनाश का स्पष्टीकरण करता है।

भिन्न-भिन्न पदार्थों में अलग-अलग गुण होते हैं तथा ये निम्न २४ प्रकार में निरूपित किए जाते हैं···रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श, ध्वनि, संख्या, विस्तार, विशिष्टता, संयोग, वियोजन, दूरी, निकटता, तरलता, विस्का-सिता, बोध, सुख, दुख, इच्छा, अरुचि, प्रयास, गुरुता, प्रवृत्ति, गुण और अवगुण। किसी पदार्थ में क्रिया एक गति होती है जो कई प्रकार की हो सकती है। एक वर्ग की सभी वस्तुओं में पाए जाने वाला अनन्त सार—सामान्यता कहलाती है और अनन्त अस्तित्वों का एकमात्र (अनन्य) व्यक्तित्व—विशिष्टता कहलाती है। समवाय संघटक भागों का संपूर्ण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परमाणुओं का संयोग

कणाद ने वस्तुओं के एक अथवा भिन्न वर्गों के परमाणु संयोजन के ढंग के बारे में भी अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। एक परमाणु अन्तर्निहित आवेग के अधीन किसी अन्य परमाणु से संयोग करके द्विवकों का (जिन्हें हम द्विअंगी अणु कह सकते हैं) निर्माण करते हैं। जोड़ों में संयोजित होकर एक ही प्रकार के पदार्थ के परमाणुओं से ऐसे अणु उत्पन्न होते हैं जिनके गुण सादृश तथा परमाणुओं के मूल गुणों के अनुरूप ही होते हैं वशर्ते कि ऊष्मा (तेज) की क्रिया के अन्तर्गत कोई रासायनिक परिवर्तन न हुआ हो। फिर ये द्विअंगी अणु तीन, चार, पांच इत्यादि समूहों द्वारा आपस में संयोजित होकर अपेक्षाकृत वड़े समूहों का निर्माण करते हैं और इस प्रकार विविध प्राथमिक पदार्थों का सृजन होता है। परमाणु दो-दो, तीन-तीन, चार-चार आदि समूहों में भी प्रत्यक्षतः अथवा प्रत्येक पूर्ववर्ती समूह में एक परमाणु के क्रमिक योग द्वारा संयोजित हो सकते हैं। इसके फलस्वरूप द्विअंगी, तृतीयक और चतुष्क आदि अणुओं का निर्माण होता है। इस प्रकार एक ही वर्ग उदाहरणस्वरूप मिट्टी के प्राथमिक पदार्थों का वैविध्य उनकी आणुविक रचना और संरूपण में अन्तर के परिणामस्वरूप पाया जाता है।

पाक (रासायनिक परिवर्तन)

किन्तु प्राथमिकता संयोजन द्वारा इस प्रकार उत्पन्न प्राथमिक पदार्थों में गुणात्मक रूपान्तरण (रासायनिक परिवर्तन) हो सकता है। यह रूपान्तरण ऊष्मा (तेज) के साथ संयोजन के कारण, मूलभूत परमाणुओं में वियोजन प्रक्रिया द्वारा परमाणुओं के स्वभाव में रूपान्तरण तथा रूपान्तरित पमाणुओं के नये विशिष्ट गुणों से युक्त विभिन्न समूहों अथवा व्यवस्थाओं के साथ दोबारा संयोजन द्वारा हो सकता है। यह उस समय देखा जा सकता है जब एक नये वने हुए मिट्टी के वर्तन को अग्नि में रखा जाता है और इसके रंग तथा अन्य विशेषताओं में परिवर्तन हो जाता है अथवा किसी कच्चे आम को किसी मोटे गर्म कपड़े के अन्दर लपेट कर रखा जाता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

है और इसके रंग, स्वाद, गंध और सामंजस्य में परिवर्तन हो जाता है। उक्त परिवर्तनों में से प्रत्येक परिवर्तन ऊष्मा (तेज) के साथ संयोजन में अंतर के कारण ही उत्पन्न होता है।

एक ही अथवा अलग-अलग वर्ग के दो या दूसरे अधिक पदार्थों के परमाणुओं के मध्य भी संयोजन हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप विविध यौगिकों का निर्माण होता है जो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राकृतिक उत्पादों को संघटित करते हैं।

कणाद सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार संक्षेप और सरल ढंग में ब्रह्माण्ड नाना प्रकार के परमाणुओं में निर्मित होता है।

यूनानी दर्शन से तुलना

यूनानी दर्शन में भी ब्रह्माण्ड के पारमाणविक स्वभाव की धारणा की व्याख्या ल्यूसिफस, डिमोक्रिट्स (460-370 ई० पूर्व) तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा की गयी है किन्तु कणाद सिद्धान्त की तुलना में यूनानियों के सिद्धान्त अपरिष्कृत प्रतीत होते हैं। कोलब्रुक की इस बात से बहुत से यूरोपीय विद्वान सहमत हैं जो उन्होंने यूनानी दार्शनिक पद्धति द्वारा भारतीय विचारों को ग्रहण करने के बारे में कही है। कोलब्रुक ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है कि "कम-से-कम इस क्षेत्र में तो भारतीय नौसिखिये नहीं बल्कि गुरु ही थे।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ब्रह्माण्ड की सृष्टि के सिद्धान्त के प्रतिपादक :

कपिल

बहुधा वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते हैं, अस्वीकार कर दिये जाते हैं और फिर दशाब्दियों अथवा शताब्दियों के बाद उन्हें पुनः स्वीकार किया जाने लगता है। सत्य अथवा असत्य कोई स्थायी तत्त्व नहीं होते हैं, नये प्रमाण एक को दूसरे में परिवर्तित कर सकते हैं। कौन जानता है कि आज जिस विचार को पुराना समझा जा रहा है, कल वही स्वीकृत सत्य हो जाए। कभी यह समझा जाता था कि तत्त्वों को अन्य तत्त्वों में बदला जा सकता है। इसी धारणा ने कीमिया के समृद्ध विज्ञान को जन्म दिया और शताब्दियों तक विद्वान व्यक्तियों का मस्तिष्क इसी में व्यस्त रहा। तत्पश्चात यह खोज हुई कि तत्त्वों के परमाणु अपरिवर्तनीय तथा अविनाशी होते हैं। किन्तु आज हम फिर तत्त्वों के रूपांतरण की धारणा पर वापस लौट आए हैं और कुछ क्षेत्रों में तो यह दावा भी किया जाता है कि वस्तुतः तत्त्वान्तरण किया जा चुका है। शायद अभी तक लोलक ठहर नहीं पाया है।

वैज्ञानिक सिद्धांतों का उक्तोल्लेखित पक्ष हमें अपने प्राचीन भारतीय साहित्य की पुनः छानवीन करने तथा यह देखने को प्रोत्साहित करता है कि उस युग के महान् व्यक्ति ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि का क्या स्पष्टीकरण दिया है। इस प्रश्न ने व्यापक रूप में उनके ध्यान को आकर्षित किया और उन्होंने इस संबंध में अपने-अपने दृष्टिकोण अथवा सिद्धान्त प्रस्तुत किए। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के इन सिद्धांतों में से एक सिद्धान्त का प्रतिपादन कपिल ने अपने सांख्य-सूत्रों में किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कपिल को वितथ और देवहुति का पुत्र तथा महान् ब्राह्मण ऋषि स्मृतिकार मनु का वंशज बताया जाता है। संभवतया उनका जन्म आधुनिक अजमेर के निकट पवित्र स्नानस्थल पुष्कर में हुआ और वह ई० पू० आठवीं अथवा सातवीं शताब्दी में गंगानगर में रहे होंगे। परिवर्ती पुस्तकों में कुछ संदर्भ हैं जिनसे यह पता चलता है कि कपिल अपने जन्म के समय अलौकिक शक्ति से सम्पन्न थे। बाद में उन्हें उस समय प्रचलित विश्वासों और व्यवहार से घृणा हो गयी। अतः उन्होंने स्वयं अपने तथा अन्य व्यक्तियों के लिए एक पद्धति सोच निकाली जिससे वह द्रव्य और भावना से संबंधित रहस्य की गुत्थी सुलझ जाने की आशा करते थे। उनके समय में लोग उनका अत्यधिक सम्मान करते थे तथा उनकी पद्धति से सहमत न होने वाले व्यक्ति भी उनके उत्कृष्ट ज्ञान एवं सत्यनिष्ठा की प्रशंसा करते थे। बाद में उनके नाम के चारों ओर रहस्य और गल्पों का ऐसा पर्दा घिर गया तथा धीरे-धीरे उनके प्रति इतनी अधिक श्रद्धा प्रदर्शित की जाने लगी कि यदा-कदा उन्हें दिव्य कपिल, ब्रह्मा का पुत्र और भगवान् विष्णु का अवतार, अग्नि का एक रूप आदि नामों से पुकारा गया।

उनकी दर्शन-पद्धति को सांख्य की संज्ञा किस प्रकार दी गयी, इसकी कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिली। सांख्य शब्द का अर्थ है—संख्या। इस आधार पर कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार है कि उनके दर्शन को यह नाम इसलिए दिया गया, क्योंकि इसका उद्देश्य ज्ञान के अन्तिम लक्ष्यों की गणना द्वारा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करना था। किन्तु अधिकांश व्यक्तियों का विचार है कि सांख्य का अर्थ पूर्णज्ञान अथवा बुद्धिमत्ता होता है।

'प्रकृति और गुण'

सांख्य सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति प्रकृति नामक एक अस्पष्ट, अभिन्न, अपरिमित और अनन्त मूल आधारसे हुई। यह तीन मूल सात्वों—गुणों से बनी होती है। क्रमशः ये गुण भी अनिर्धारित तथा स्वतंत्र अस्तित्व के अयोग्य हैं किन्तु इनमें कुछ विशेष गुण होते हैं। पहले गुण को तामस अथवा द्रव्य कहते हैं और इसमें जड़ता का गुण होता है। दूसरा गुण है राजस अथवा ऊर्जा और इसमें कार्य करने अथवा अवरोध को

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दूर करने का गुण होता है। तीसरा है सत्त्व अथवा सार और इसमें ज्ञानेन्द्रियों को कुछ व्यक्त करने का गुण होता है। प्रकृति में ये सभी गुण एक समान विस्तार तथा संतुलन की स्थिति में होते हैं। कार्य करने की ऊर्जा की प्रवृत्ति का प्रतिकरण द्रव्य की जड़ता द्वारा हो जाता है और इस प्रकार प्रकृति का स्वभाव ज्यों-का-त्यों बना रहता है।

अशान्त प्रकृति

परमात्मा ने अपने लोकोत्तर प्रभाव द्वारा प्रकृति की इस साम्य स्थिति में विघ्न डाला। सबसे पहले ऊर्जा के गुण को अशान्त किया गया। तत्पश्चात अन्य गुणों ने भी कम्पित होना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप प्रकृति में एक भयंकर हो-हल्ला मच गया और गुणों का एक असमान एकत्रीकरण अथवा समूहन हो गया तथा भिन्न-भिन्न स्थानों पर किसी एक या दूसरे गुण का सापेक्षिक बाहुल्य हो गया और इसने ब्रह्माण्ड की सृष्टि का मार्ग खोल दिया।

अगोचर सृष्टि

सृष्टि की प्रथमावस्था में, द्रव्य पर ऊर्जा की क्रिया द्वारा एक जड़ वस्तु का निर्माण हुआ जिसमें संहति के अतिरिक्त कोई अन्य गुण नहीं था। इसे भूतादि कहते हैं। दूसरी अवस्था में भूतादि से अलग-अलग प्रकार के पांच तन्मात्र प्रकट हुए—ये भिन्न प्रकार की ऊर्जा से युक्त अस्तित्व थे। इन ऊर्जाओं ने तन्मात्रों को ध्वनि, स्पर्श, रंग, स्वाद और गंध जैसे कुछ लक्षण प्रदान किए। एक तन्मात्र को केवल एक ही लक्षण मिला। किन्तु ये लक्षण व्यक्त नहीं हुए, क्योंकि तन्मात्र भौतिक रूप से अगोचर थे।

स्थूल सृष्टि

तीसरी अवस्था में पांच भिन्न-भिन्न (इन्द्रिय) गोचर स्थूल तत्त्वों का निर्माण हुआ। इन्हें सामूहिक रूप से 'भूत' नाम दिया गया। ये विभिन्न प्रकार के अणुओं से बने होते हैं। अणु वे कण होते हैं जो किसी वस्तु को इस सीमा तक विभाजित और उपविभाजित करने पर प्राप्त होते हैं जब तक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कि उसका और आगे उपविभाजन करना असंभव हो जाता है, उदाहरण-स्वरूप जैसे एक सूर्य-किरण के मार्ग में दिखाई देने वाले हवा में तैरती हुई लघुतम कणिकाएँ। स्थूल तत्वों और उनके अणुओं का नाम है—आकाश (ईथर), वायु (हवा), तेजस् (अग्नि), अप (जल) और क्षिति (भूमि)। विविध स्थूल तत्त्वों के लिए प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्दों का सही अर्थ नहीं निकल पाता। क्योंकि स्थूल तत्त्व अपने संघटकों और गुणों के आधार पर वस्तुओं के एक वर्गीकरण को प्रकट करते हैं। जैसे उदाहरणस्वरूप भूमि सभी ठोस, जल सभी द्रव और वायु सभी गैसीय वस्तुओं का अर्थ रखती है।

स्थूल तत्त्वों के भिन्न-भिन्न अणु स्वयं में जटिल तन्मात्रिक संरचनाएँ हैं और उनका निर्माण निम्न प्रकार से हुआ। ध्वनि-तन्मात्रों से उनके समूहन द्वारा आकाश (ईथर) उत्पन्न हुआ जो एक-एक तन्मात्रिक है तथा जिसका स्थूल तत्त्व सर्वव्यापक था और उसमें ध्वनि का गुण था। स्पर्श-तन्मात्रों तथा ध्वनि-तन्मात्रों के संयोजन से वायु की उत्पत्ति हुई जो द्वितन्मात्रिक है और जिसके स्थूल तत्त्व ने एक गैसीय आवरण बनाया। इसमें ध्वनि और स्पर्श दोनों के ही गुण थे। रंगतन्मात्रों ने ध्वनि एवं स्पर्शतन्मात्रों से संयोजित होकर त्रितन्मात्रिक अग्नि (तेजस्) की उत्पत्ति की जिसके स्थूल तत्त्व ने वड़ी-वड़ी ज्वालाओं को जन्म दिया। इसमें ध्वनि, स्पर्श और रंग तीनों के ही गुण थे। स्वाद तन्मात्रों के ध्वनि, स्पर्श एवं रंग तन्मात्रों से संयोजित होने पर चतुष्तन्मात्रिक जल की उत्पत्ति हुई जिसका स्थूल तत्त्व विस्कास तरल था और इसमें ध्वनि,स्पर्श, रंग और स्वाद के गुण थे। गंध तन्मात्रों ने पूर्व चार तन्मात्रों से संयोजन कर पंचतन्मात्रिक पृथ्वी की उत्पत्ति की जिसका स्थूल तत्त्व ठोस पदार्थ था और इसमें ध्वनि, स्पर्श, रंग, स्वाद और गंध के गुण थे। आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि के पांच भौतिक तत्त्वों में क्रमशः ध्वनि, स्पर्श, रंग, स्वाद एवं गंध के सुस्पष्ट और विशिष्ट गुण होते है।

समान स्थूल तत्त्व से संबंध रखने वाली वस्तुओं की विशालता, विविधता उनमें भिन्न-भिन्न गुणों और तन्मात्रों के संयोजन के अन्तर के परिणामस्वरूप होती हैं।

इस प्रकार इन तीन मूल गुणों के असंख्य परिवर्तित संयोजनों के

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिणामस्वरूप संसार की वस्तुओं में एक अनन्त वैविध्य उत्पन्न होता है।

दोतरफ़ी प्रक्रिया

सांख्य सिद्धांत के अनुसार गुण सदा ही संयोजित, पृथक् और पुनः संयोजित होते रहते हैं, अतः ब्रह्माण्ड का विकास एक दोतरफी प्रक्रिया है—सृजनात्मक एवं विनाशात्मक। यद्यपि संयोजन द्वारा गुण विविध वस्तुओं का निर्माण करते हैं किन्तु गुणों का न तो उत्पादन किया जा सकता है और न ही विनाश। यदि हम प्रकट और अप्रकट, वास्तविक और अन्तर्निहित दोनों का ही हिसाब लगाएँ तो द्रव्य तथा ऊर्जा की समस्त मात्रा स्थायी रहती हैं। ब्रह्माण्ड की सृष्टि-प्रक्रिया में क्रमिक परिवर्तन सम्पूर्ण से भागों में अथवा भागों से सम्पूर्ण में नहीं होता बल्कि यह परिवर्तन अपेक्षाकृत कम संसक्त तथा अस्पष्ट सम्पूर्ण से अपेक्षाकृत अधिक संसक्त और अधिक स्पष्ट तथा अधिक विशिष्ट सम्पूर्ण में होता है।

आधुनिक सिद्धान्तों से तुलना

आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की तुलना में ब्रह्माण्ड और द्रव्य की सृष्टि का यह प्राचीन भारतीय सिद्धान्त कैसा है? वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिक इस संबंध में काफी उलझन में पड़े हुए प्रतीत होते हैं और इसका उनके पास कोई एक उत्तर नहीं है। आपको यह तथ्य निम्न उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा। प्रोफेसर हायेल कहते हैं "समय-समय पर लोग पूछते हैं कि सृजित पदार्थ कहाँ से आता है। देखिये, यह कहीं से नहीं आता। पदार्थ साधारणतया प्रकट होता है। एक समय पर पदार्थ को निर्मित करने वाली विविध वस्तुओं का अस्तित्व नहीं होता। किन्तु बाद में किसी समय उनका अस्तित्व होता है। यह बहुत ही अनोखा विचार प्रतीत हो सकता है," और मैं समझता हूँ कि "यह अनोखा विचार है भी, किन्तु विज्ञान में इसका कोई महत्त्व नहीं होता कि कोई विचार कितना ही आश्चर्यजनक है जब तक यह ठीक चलता रहता है अर्थात् जितनी देर तक किसी विचार को सही व्यक्त किया जा सकता है और जितनी देर तक इसके निष्कर्ष प्रेक्षण के अनुरूप हैं। (तब तक यह विचार मान्य रहता है।)" उपसंहार करते हुए वह

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कहते हैं, फिर भी, सृष्टि की पूरी धारणा आश्चर्यजनक है।" प्रोफेसर बौन्डी कहते हैं, "...यह स्पष्ट समझ लेना चाहि कि ब्रह्माण्ड विकिरण से उत्पन्न नहीं हुआ अपितु अनस्तित्व से हुआ।" पूर्व राज-ज्योतिषी सर हेरल्ड स्पेन्सर जॉनस् का कहना है, "प्रायः ये प्रश्न किये जाते हैं कि पदार्थ की सृष्टि किस में से हुई और यह कथारूप धारण करता ह ? इसकी सृष्टि अनस्तित्व से हुई। यह मान लिया जाना चाहिए कि वास्तविक सृष्टि एक निरन्तर प्रक्रिया के रूप में अनन्त काल से होती रही है।" इसके विपरीत प्रोफेसर जे० आर० ओपेनहाइमर ने अपनी रीथ् भाषणकला में कहा है, "जिन्हें भौतिकविद् अस्पष्टतया बल्कि असहाय रूप में 'नवीन कण' कहत हैं, वे आज की भौतिकी की सर्वाधिक गूढ पहेली हैं, किन्तु इस उत्तर को अथवा कोई उत्तर प्रस्तुत न करने की प्रकृति को भौतिकी द्वारा स्थापित ब्रह्माण्ड के किसी भी चित्र के भाग-स्वरूप नहीं रखा जा सकता, क्योंकि अनस्तित्व से सृष्टि होने की धारणा नाम-मात्र को भी विज्ञान नही है, यह विचार केवल जादू है। आकाश कल्पना को," वह कहते हैं, "यदि स्वीकार कर लिया जाए तो यह नवीन कणों की उत्पत्तियों अथवा नवीन विकिरणों अथवा बल की नवीन रेखाओं की उत्पत्ति को ब्रह्माण्ड की सामान्य कार्य-विधि का एक भाग मान लेगा।" वह आगे कहते हैं, "कण कहाँ से आते हैं ?—इस प्रश्न का उत्तर यह होगा "कि वे निष्क्रिय ऊर्जा के ब्रह्माण्डीय एवं आद्य उत्पत्ति-स्थान से निकलते हैं।"

आद्य उत्पत्ति-स्थान अथवा प्रकृति

इस आधुनिक एवं विख्यात वैज्ञानिक का यह "निष्क्रिय ऊर्जा का ब्रह्माण्डीय एवं आद्य उत्पत्ति-स्थान" प्राचीन युगीन भारतीय दार्शनिक वैज्ञानिक कपिल के शब्दों में 'प्रवृत्ति' है। ध्यान देने योग्य बात यहाँ यह है कि इन दोनों ने ही इस प्रश्न का उत्तर केवल अतींद्रिय अवलोकन द्वारा प्रस्तुत किया है।

यह एक और उदाहरण है जिससे यह प्रकट होता है कि जहाँ प्रयोग-शाला के अनुभव उत्तर नहीं दे सकते, वहाँ अधितात्त्विकी कार्य करने हेतु एक परिकल्पना प्रस्तुत करती है। दोनों ही एक-दूसरे की सहायता करते हैं तथा प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता होती है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक विधितंत्र के प्रवर्त्तक :

गौतम अक्षपद

प्रत्येक विषय में, चाहे वह विज्ञान हो अथवा कला, दर्शन अथवा धर्म-शास्त्र, शोध और अनुसंधान हेतु कतिपय विधियों की आवश्यकता होती है जिनका अनुसरण किया जा सके। इन विधियों के अन्तिम विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि इन विधियों के कुछ आधारभूत सिद्धांत होते हैं जो अध्ययन के प्रत्येक विषय के लिए अनिवार्यत: एक समान होते हैं। गौतम अक्षपद नामक एक प्राचीन भारतीय दार्शनिक वैज्ञानिक ने इन आधारभूत सिद्धांतों की खोज की, अनुसंधान किया तथा इन्हें प्रतिपादित किया। इन विधियों द्वारा गौतम का उद्देश्य सृजक (परमात्मा) तथा उसकी सृष्टि को समझना और जानना था ताकि वह उस आत्मा की मुक्ति के ध्येय को प्राप्त कर सकें। यह उच्चतम ध्येय है जिसे प्राप्त करने की कोई प्राणी आकांक्षा करता है।

गौतम अथवा अक्षपद कौन थे, कब और कहाँ रहते थे—इसके बारे में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता। शायद वह बुद्ध के समय से पहले हुए तथा कणाद के समकालीन थे जो ई०पू० छठी शताब्दी में हुए थे। कुछ प्रमाणों से आभास होता है कि वह मिथिला में रहते थे (यह नेपाल के एकदम दक्षिण में स्थित थी। इसके उत्तर में नेपाल, पूर्व-दक्षिण और पश्चिम में क्रमश: कोसी, गंगा और गंडक नदियां थीं)। न्याय (जिसका अर्थ है विश्लेषण)-सूत्रों में गौतम द्वारा रचित दर्शन की पद्धति निहित है। इन सूत्रों का वर्तमान रूप दूसरी शताब्दी ई० से पहले का प्रतीत नहीं होता।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किन्तु इससे न्याय-सूत्रों की मूल प्राचीनता अथवा उनमें व्यक्त अनिवार्य विषयवस्तु की प्रामाणिकता को झुठलाया नहीं जा सकता।

न्याय के अनुसार किसी घटना अथवा वस्तु के यथार्थ परिचय को स्थापित करने की चार विधि हैं। ये विधि हैं—प्रत्यक्ष बोध (अवबोधन), अनुमान, उपमान (तुलना) तथा आप्तवाक्य (प्रमाण)।

प्रत्यक्ष बोध (अवबोधन)

विविध ज्ञानेन्द्रियों—दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद, गंध और बुद्धि के सम्पर्क में आने पर वस्तुओं की पहचान और ज्ञान ही उस वस्तु का प्रत्यक्ष बोध है। यद्यपि इसमें प्रेक्षण सम्मिलित है किन्तु इसमें निश्चय ही केवल प्रेक्षण से कहीं कुछ अधिक है। यदि ज्ञानेन्द्रिय और वस्तु का सीधा सम्पर्क होता है, तो इसका परिणाम होता—'साधारण अवोधन'। यह भी दो प्रकार का होता है—बाह्य एवं आन्तरिक। बाहरी ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क से बाह्य अवबोधन होता है और आन्तरिक ज्ञानेन्द्रिय अर्थात बुद्धि (मस्तिष्क) के सम्पर्क में आने से आन्तरिक अवबोधन। जब कोई वस्तु या घटना इस प्रकार की होती है कि यह ज्ञानेन्द्रियों अथवा उपयुक्त ज्ञानेन्द्रिय के समक्ष साधारणतया विद्यमान नहीं होती अथवा उस वस्तु या घटना का बोध किसी असाधारण माध्यम द्वारा होता है, तब इस प्रकार की पहचान अथवा बोध को 'विशिष्ट अवबोधन' कहा जाता है। यह भी निम्न तीन प्रकार का होता है। जब हम कहते हैं कि सभी मनुष्य मर्त्य हैं तो हम सार्वभौमिक सत्य का एक श्रेणी में अवबोधन करते हैं। जब हम कहते हैं कि बर्फ ठंडा दीखता है, तब हम इसका अवबोधन ऐसी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा कर रहे हैं जो साधारणतया इस अवबोधन के समर्थ नहीं हैं। और अन्तिम है वस्तुओं में भूत-भविष्य अथवा गुप्त का 'अन्तर्दर्शी अवबोधन'। इसके लिए वह व्यक्ति समर्थ होता है जिसमें कुछ अलौकिक शक्ति होती है।

अनुमान

अनुमानित वस्तु से निरपवाद रूप से संवद्ध किसी चिह्न की समझ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के द्वारा वस्तुओं का ज्ञान ही 'अनुमान' है। इसका सबसे अच्छा चित्रण प्रायः दिए जाने वाले निम्न उद्धरण में (यद्यपि अब यह पुराना पड़ गया है) मिलता है। "पहाड़ी आग्नेय है, क्योंकि इससे धुआं निकलता है और जिसमें धुआं निकले, वह आग्नेय है।" यह अनुमान लगाने में घटनाओं का क्रम इस प्रकार है : प्रथम पहाड़ी से धुआं निकलने का बोध, द्वितीय धुआं और अग्नि से सार्वभौमिक संबंध का स्मरण और तृतीय पहाड़ी में अग्नि का अभिज्ञान।

'अनुमान' तर्कसंगत हो, इसके लिए कुछ आवश्यक अपेक्षाओं को पूरा करना जरूरी है। सर्वप्रथम, दो वस्तुओं के बीच 'अन्वय' में सहमति का संबंध होना चाहिए, अर्थात् हर दशा में जहां एक वस्तु विद्यमान है, वहां दूसरी वस्तु को भी होना चाहिये। उदाहरणस्वरूप जहां कहीं भी धुआं है, वहीं अग्नि। दूसरे, उनके बीच अनुपस्थिति (व्यतिरेक) में भी एक समान सहमति, जैसे जहां धुआं नहीं है, वहां कोई अग्नि भी नहीं है। तीसरे, उनमें से कोई एक दूसरे के बिना ही विद्यमान है (व्यभिकाराग्रह) उनमें कोई परस्पर-विरोधी दृष्टान्त नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त तीनों बुनियादी अपेक्षाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य निम्न अपेक्षाएं भी उतनी ही आवश्यक हैं : उन सभी परिस्थितियों का बहिष्करण जिन पर संभवतया यह संबंध निर्भर हो सकता है (उपादिनिरस) तथा जब किसी विशिष्ट घटना से सामान्यीकरण किया जाये, तब यह सामान्यीकरण अन्ततोगत्वा वस्तुओं के अनिवार्य स्वभाव के ज्ञान पर आधारित होना चाहिये।

उपस्थिति और अनुपस्थिति में सहमति होने तथा दो घटनाओं के बीच कोई परस्परविरोधी दृष्टांत न होने के फलस्वरूप सामान्यतया चिह्न और आनुमानित लक्षण के बीच यद्यपि निरापद व्याप्ति (सहवर्तिता) स्थापित हो जाती है, जैसे धुआं और अग्नि, फिर भी इसके प्रत्येक मामले में पर्याप्त न होने की सम्भावना भी हो सकती है जैसा कि निम्न उदाहरण से स्पष्ट है। कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति कार्यालय से घर लौटकर प्रतिदिन रेडियो चालू करता है और बराबर के मकान में रहने वाला एक बालक प्रतिदिन उसी समय पर स्त्री-स्वर में एक गाना सुनता है। सैकड़ों बार वह बालक यह देखता है कि जब वह व्यक्ति घर आता है तो वह गाना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुनता है और सकड़ों बार यह भी देखता है कि जब वह व्यक्ति घर पर नहीं होता, तब वह गाना नहीं सुनता। यदि बालक को रेडियो का पता नहीं है तथा वह इस संबंध में और भी कुछ नहीं जानता, तब वह अनुमान कर सकता है कि मनुष्य स्त्री-स्वर में गाता है। मेरे विचार से, इसी प्रकार के अनुमान यदा-कदा आधुनिक वैज्ञानिक कृतियों में भी मिल जाते हैं। किन्तु यह अनुमान सत्य नहीं है। अत: यह स्पष्ट है कि अनुपस्थिति अथवा उपस्थिति में सहमति होना ही चाहे यह अखंडित और एक समान ही हो, किसी प्रामाणिक अनुमान का निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है। प्रासंगिक गुप्त निर्धारक परिस्थितियों में (उपाधि) तथा संलग्न व्यौरे को एक-एक करके जांचना होगा और बार-बार प्रयोग करके तथा प्रेक्षण द्वारा विलुप्त करना होगा ताकि चिह्न और आनुमानित लक्षण के बीच एक निरापद व्याप्ति (सहवर्तिता) स्थापित हो सके और तभी प्रामाणिक और यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हो सकेगी। इन सभी परिस्थितियों तथा इनमें वहीं अधिक संबंधित बातों का गौतम के न्याय सूत्रों में समुचित विवेचना की गई है।

उपमान (तुलना)

उपमान (तुलना) किसी वस्तु अथवा घटना का वह ज्ञान है जो एक संज्ञा (नाम) तथा उस नाम वाली वस्तु अथवा एक शब्द और असके अर्थ के बीच एक संबंध की स्थापना द्वारा प्राप्त होता है। इसे निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को यह बताया जाता है कि इस-इस प्रकार के लक्षण वाला पशु—गाय होती है। जब उस व्यक्ति को पहली बार उन लक्षणों से मिलता-जुलता कोई पशु दिखाई देगा, तो वह तुलना द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि जो पशु उसने देखा—वह गाय है।

किन्तु अन्य पद्धतियों ने तुलना (उपमान) को ज्ञान का एक पृथक् साधन स्वीकार नहीं किया है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आप्तवाक्य (प्रमाण)

चौथी विधि में किसी वस्तु की परिचय-स्थापना प्रमाण (आप्त वाक्य) द्वारा की जाती है अर्थात् वेद-सरीखे धार्मिक ग्रंथ अथवा ऋषि-मुनियों की उक्तियों जैसे अधिकृत स्रोतों के कथनों से देखी और अनदेखी वस्तुओं का ज्ञान होना प्रमाण द्वारा उपलब्ध ज्ञान होता है। पश्चिमी विद्वानों ने ज्ञान के इस स्रोत की यह दलील बहुत देकर आलोचना की है कि वेदों के प्रमाण की पूर्ण रूप से स्वीकृति ने समुचित तर्क के विकास को सीमित किया है तथा इस विकास में बाधा डाली है। किन्तु शायद वे लोग यह नहीं जानते कि जो कुछ भी वेदों में लिखा है उसकी व्यक्तिगत विचार-प्रणाली के अनुसार विभिन्न विद्वानों और व्यक्तियों द्वारा कितनी अधिक व्याख्याएं की गई हैं और उन्हें स्वीकार किया गया है। कभी-कभी ये व्याख्याएं एक-दूसरे के बिलकुल विपरीत भी हैं किन्तु इससे वेदों के प्रति प्रदर्शित गहनतम श्रद्धा में लेश मात्र भी अन्तर नहीं हुआ।

व्यावहारिक उपयोग

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतवासियों के लिए उनके सिद्धांत और दर्शन केवल शास्त्रीय रुचि के लिए ही नहीं थे। वे उन विचार-धाराओं के अनुसार जीवन व्यतीत करते थे तथा अपने व्यावहारिक विज्ञानों में उनका उपयोग करते थे। आयुर्वेदिक चिकित्सा-शास्त्र के सिद्धांत व्यय-हार और उपचार व्यापक और विस्तृत रूप से न्याय तथा भारतीय दर्शन की अन्य पद्धतियों पर आधारित हैं। वस्तुतः ये तथाकथित दार्शनिक पद्धतियां आयुर्वेद को समझने के लिए उतनी ही आधारभूत हैं जितना कि पश्चिमी चिकित्सा शास्त्र अथवा अन्य व्यावहारिक विज्ञानों को समझने के लिए अन्य मूल विषय।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्राचीन कृषिविद् :

खन

खन कौन थी, कब और कहां रहती थी, इसका अन्दाजा कृषि पर उनकी कुछ आकर्षक सूक्तियों से भी लगाया जा सकता है। एक सूक्ति में उन्होंने वराहमिहिर के नाम का उल्लेख किया है जो छठी शताब्दी ई० में हुए थे। कृषि पर उनकी सूक्तियों तथा संस्कृत पुस्तक कृषि प्रसार के (जिसे छठी शताब्दी में ही लिखी गई बताया जाता है) विषय-वस्तु में अत्यधिक समानता है। उनकी अधिकतम सूक्तियां बंगाल की भूमि पर लागू होती हैं। हम इससे शायद यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि खन छठी शताब्दी ई० के आसपास बंगाल में ही कहीं रहती होगी। उनकी कृषि-संबंधी उक्तियां बंगाली किसानों में बहुत अधिक लोकप्रिय हैं।

उनकी कृषि-सूक्तियों से इस क्षेत्र में उनके व्यापक अनुभव का आभास मिलता है। वह लिखती हैं, "वह स्वामी, जो स्वयं अपनी भूमि पर खेती करता है अथवा अन्य व्यक्तियों के सहयोग से खेती कराता है, पूरी फसल काटता है; वह व्यक्ति जो दूसरों से खेती कराता है और स्वयं उन पर निगाह रखता है अपेक्षाकृत कम फसल प्राप्त करता है; किन्तु उस स्वामी के समक्ष जो स्वयं घर पर बैठा रहता है और दूसरे उसकी भूमि पर खेती करते हैं, उसे पूरे जीवन-भर आर्थिक कठिनाई बनी रहती है। अच्छी व्यवस्था वह होती है जिसमें पिता और पुत्र अथवा भाई भूमि पर खेती करने में परस्पर सहयोग करते हैं।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्षा

खन के समय में भी भूमि की जुताई और खेती वर्षा पर उतनी ही निर्भर थी जितना कि आज है। निम्न सूक्तियों से यह काफी स्पष्ट हो जाता है :

"यदि नवम्वर-दिसम्वर (अग्रहायण) में वर्षा हो तो राजा तक को भीख मांगनी पड़ती है और यदि वर्षा पौष (दिसम्वर-जनवरी) में हो तो भूसी भी अच्छे दामों में विकती है। यदि वर्षा माघ (जनवरी-फरवरी) में हो तो देश को भाग्यशाली समझना चाहिए तथा शासक को इस पर वधाई देनी चाहिए। यदि वर्षा फाल्गुन (फरवरी-मार्च) में हो तो चने का उत्पादन वहुत अधिकहोता है। जिस वर्ष आषाढ़ (जून-जुलाई) के कृष्ण पक्ष के नवें दिन अत्यधिक वर्षा हो, तो सारस को समुद्र की तली पर चलना होगा (अर्थात भयंकर सूखा पड़ेगा)। किन्तु यदि उस दिन बूंदावांदी हो, तो साल-भर इतनी अधिक वर्षा होती रहेगी कि पहाड़ों की चोटियों पर भी मछलियां जा वसेंगी। यदि पूरे सालभर ही वर्षा यदा-कदा होती रहे, तो पृथ्वी फसल के भार उठाने में समर्थ भी नहीं होगी। यदि सूर्य छिपने के समय आकाश साफ रहे, तो किसान को अपने बैलों को वाजार में वेचना पड़ता है।"

"ज्येष्ठ (मई-जून) में सूखा तथा आषाढ़ (जून-जुलाई) में वौछारें पड़ने पर अनाज की इतनी अधिक पैदावार होती है कि पृथ्वी उसका भार नहीं उठा पाती। यदि वर्ष के प्रारम्भ में उत्तर-पूर्व की ओर से हवा चले तो उस वर्ष यकीनन वर्षा अच्छी होगी। यदि कार्तिक (अक्तूवर-नवम्वर) की पूर्णमाशी के दिन ऊनी वादलों के वाद हवा चले तो पृथ्वी पर शरद ऋतु की फसलें वहुत अधिक पैदा होंगी और यदि रात को वादल और वर्षा दोनों हों, तव खेत में जाना विलकुल निरर्थक है (फसल नहीं होगी)।"

जुताई

भूमि की जुताई के सम्वन्ध में खन कहती हैं कि, "मूली के लिए जमीन को दस वार, कपास के लिए इससे आधी वार, धान के लिए उससे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भी आधी वार जोतना चाहिए और पान के लिए जुताई विल्कुल भी आवश्यक नहीं है। मूलों के लिए मिट्टी को रुई जैसा मुलायम (अत्यधिक मुलायम) और गन्ने के लिए मिट्टी को जुताई द्वारा धूल जैसा वनाना चाहिए। जुताई पूर्व की ओर से शुरू करो। यकीनन तुम्हारे सभी उद्देश्य पूर्ण हो जाएंगे। जो व्यक्ति पूर्णमासी अथवा अमावस्या के दिन हल को हाथ लगाता है, वह सारा जीवन कष्ट भोगेगा। उसके वैलों को गाऊट रोग (जोड़ों का दर्द) हो जाएगा और वह स्वयं निरन्तर अशान्ति से पीड़ित रहेगा। खन की इस सूक्ति की अवज्ञा करने वाले व्यक्ति का विनाश ही होगा।''

बोआई और रोपण

बोआई और रोपण के सम्वन्ध में खान कहती हैं धान को आषाढ(जून-जुलाई) मास में बोने से पूरी फसल मिलती है, श्रावण (जुलाई-अगस्त) में बोने से केवल पत्तियां होती हैं, फल नहीं, भाद्रपद (अगस्त-सितम्वर) में बोने से केवल भूसी और आश्विन (सितम्वर-अक्तूबर) में बोने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता। भाद्रपद के अन्तिम चार दिन तथा आश्विन के प्रथम चार दिनों में जितनी भी मूंग (फैंजिओल्स-रेडिएट्स बो सकते हो, बोओ इसके लिए यह श्रेष्ठतम समय है)। मटर को आश्विन के पहले 19 दिनों के वाद तथा कार्तिक के प्रथम 19 दिनों के भीतर बोना चाहिए। सरसों का शरद ऋतु के अन्त में बोओ। जो खेतिहार भाद्रपद और आश्विन में पौधे नहीं लगाता एवं अपना समय वेकार विता देता है और फिर वहुत देर से कार्तिक और अग्रहायण में बढ़े हुए वालवृक्षों को खेतों में रोपण करता है तो यह वालवृक्ष फफूंद के आक्रमण में नष्ट हो जाएंगे और किसान का वखार खाली रह जायेगा। चौसर के खेल को त्यागकर वैशाख और ज्येष्ठ में (अप्रैल से मई तक) हल्दी को बोओ, आषाढ-श्रावण में (जून से अगस्त तक) मिट्टी की निराई करो ताकि यह भाद्रपद (अगस्त-सितम्बर) में पूर्ण रूप से उपयुक्त हो जाए, अन्यथा इसके पश्चात कोई फसल नहीं होगी। वराह के पुत्र मिहिर का भी यही निर्देश है। चैत्र और वैशाख (मार्च-अप्रेल मई) को छोड़ बैंगन शेष दस महीनों में लगातार पैदा करो।"

"यदि पौधों को कीड़े लग जाएं तो राख छिड़को, भूमि सूखी हो, तो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पानी दो और तुम्हें सालभर फल मिलेंगे। श्रावण में पान लगाने से इतनी अधिक पैदावार होगी जिन्हें रावण भी नहीं चबा सकता। केले को एक हाथ गहरे गढ़ों में आठ-आठ हाथ की दूरी पर लगाओ और पत्तियों को काटो मत, तुम्हें खूब आय होगी। दिन में धूप, और रात को पानी द्वारा पौधों की शक्ति में वृद्धि होती है। धान दिन में धूप और रात में जल के द्वारा खूब फलता-फूलता है। पान छाया में बहुत फलता-फूलता है।

फसल की कटाई

फसल की कटाई के बारे में खन कहती हैं, "भुट्टा निकलने के 21 दिन बाद मक्का पक जाती है और किसान को अगले 10 दिन में इसे काटकर मक्का निकाल लेनी चाहिए। अनाज बाली निकलने के 30 दिन बाद और फूलने के 20 दिन बाद पक जाता है। फाल्गुन के अन्तिम 8 दिन के दौरान तथा चैत्र के आठ दिन पश्चात पके तिलों को काट लेना चाहिए। सन के पौधों को (रेशे के लिए) फूलते ही तथा पटसन को पकने पर काटो।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारत में जलपोत-निर्माण के प्राचीन विशेषज्ञ :

भोज

आजकल जब समुद्र पर जलपोत भाप से और नाभिकीय शक्ति से चलाए जा रहे हैं तथा भिन्न-भिन्न धातुओं के बने होते हैं, यह अत्यन्त आदि-कालीन प्रतीत होता है कि एक समय था जब जलपोत मनुष्य स्वयं पतवारों से चलाते थे तथा पोत लकड़ी के बने होते थे। फिर यह अपने में लम्बी समुद्र-यात्राओं में कोई अधिक बाधक नहीं होता था यद्यपि निश्चय ही इस प्रकार के जलपोतों में यात्राएँ जोखिम से भरी होती थीं। अन्य बहुत से देशों की भाँति भारत भी जहाज़ी गतिविधियों में भाग लेता था। प्राचीन काल में भारत के अपने पश्चिम में स्थित फोनीशिया, असीरिया, यूनान, मिस्र तथा रोम के लोगों तथा पूर्व में चीन तथा अन्य देशों के निवासियों के साथ व्यापारिक संबंध थे।

असीरिया-संबंधी ज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सायस के अनुसार भारत और बेबीलोन के मध्य ई० पू० 3000 जैसे प्राचीन समय में भी अवश्य ही समुद्र द्वारा व्यापार होता था। उस समय संयुक्त बेबीलोनिया के प्रथम राजा ऊर बगास चाल दियास के ऊर में राज्य करता था। ऊर के भग्नावशेषों में भारतीय सागौन मिलने से इस बात का प्रमाण मिल चुका है। यह विचार है कि यह लकड़ी मालाबार तट के किसी बन्दरगाह से समुद्र द्वारा वहाँ भेजी गई होगी, क्योंकि उस प्राचीन काल में समुद्र के निकट केवल वही ऐसा क्षेत्र था, जहां सागौन के वृक्ष उगते थे और वहाँ से मुनाफे के साथ इसका निर्यात किया जा सकता था। पूर्व आकिग्रामेनिद काल में

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ई० पू० छठी शताब्दी से पहले समुद्र पर चलने वाले पोत सामान्यतया तट के निकट रहते थे तथा भारत, बिलोचिस्तान, फारस और अरब के तट के सहारे-सहारे लाल सागर में से होकर उनके ऊपरी सिरे स्वेज तक लम्बी समुद्र-यात्रा करने गए थे। संभवतया उस समय भारतीय और पश्चिमी व्यापारी अर्द्धमार्ग में लाल सागर के दक्षिणी छोर पर स्थित दो बन्दरगाहों मूज़ा अथवा अदन में मिलते थे और एक-दूसरे के माल को अपने-अपने जहाज़ों में बदल लेते थे। ई० पू० तीसरी शताब्दी में एक महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग फारस की खाड़ी में से होकर तिगरिस और सैल्यूविया तक जाता था।

मौर्य, गुप्त और हर्षवर्धन के साम्राज्यों की अवधि में भारत के पूर्व की ओर भी जलपोतों का पर्याप्त आना-जाना रहता था। जहाज़ बंगाल में नियमित रूप से चलते थे और बंगाल तथा ब्रह्मा के तटों के सहारे यात्रा करके अथवा सीधे ही बंगाल की खाड़ी को पार कर मलाया प्रायद्वीप समूह और तत्पश्चात पूर्वी द्वीप समूह (इंडोनेशिया) और इससे भी आगे इंडो-चीन (वियतनाम) तक जाते थे। अनाम, कम्बोदिया और जावा का हिन्दू उपनिवेशीकरण इस जहाज़ी गतिविधि की अत्यधिक शानदार सफलताओं में एक उपलब्धि थी।

भोज नरपति

संस्कृत पाण्डुलिपि 'युक्ति कल्पतरु' में नाव और जहाज़ बनाने की कला और विज्ञान का सार निहित है। इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न प्रकार के जहाज़ों, उनके आकार और नामों, उनके उपयोगों, उनकी साज-सज्जा उनकी केबिनों तथा क्षमताओं और जिनसे वे जहाज बनाए जाते थे उन पदार्थों के रोचक विवरण दिए हुए हैं। इस पाण्डुलिपि को भोज नरपति द्वारा रचित बताया जाता है। इसमें एक अन्य तथा पूर्व-काल में हुए भोज का प्रायः उल्लेख मिलता है और उन्हें जलपोत-निर्माण का विशेषज्ञ स्वीकार किया गया है। संभवतया यह भोज मालवा राज्य के धार के राजा थे जो ग्यारहवीं शताब्दी ई० में हुए थे।

वर्गीकरण

'युक्ति कल्पतरु' में जलपोतों का उनके आकार के आधार पर एक

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विस्तृत वर्गीकरण दिया गया है। 'सामान्य' जलपोत वे थे जिनका साधारण नदी-यात्रा में प्रयोग होता था तथा 'विशेष' जलपोत केवल समुद्रों में ही चलाए जाते थे। सामान्य वर्ग के अन्तर्गत अलग-अलग दस प्रकार के पोत थे जिनके नाम तथा हाथों में (एक हाथ = 20·62°) माप निम्नानुसार होती थी :

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
क्षुद्र	16	4	4
मध्यम	24	12	8
भीम	40	20	20
चपल	48	24	24
पतल	64	32	32
भय	72	36	36
दीर्घ	88	44	44
पत्रपूत	96	48	48
गर्भार	112	56	56
मंथर	120	60	60

उक्त प्रकार के पोतों में से भीम, भय और गर्भार को अमंगलकारी बताया गया, शायद इसका कारण यह रहा हो कि यह अपने आकार के कारण जल पर स्थिर और भलीभांति संतुलित नहीं हो पाते थे।

समुद्र पर चलाए जाने वाले जहाजों के विशष वर्ग की दो प्रमुख उपश्रेणियां थीं—दीर्घ और उन्नत। और प्रत्येक उपश्रेणी के अन्तर बहुत-से प्रकार के जहाज थे। दीर्घ जहाजों के नाम और माप नीचे दी गई है :

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
दीर्घिका	32	4	3
तरणी	48	6	4
लोला	64	8	6
गत्वर	80	10	8

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
गामिनी	96	12	9
तारि	112	14	11
जंघला	128	16	12
प्लाविनी	144	18	14
धारिणी	160	20	16
वेगिनी	176	22	17

उक्त पोतों में से लोला, गामिनी और प्लाविनी को अमंगलकारी समझा जाता था।

उन्नत उपश्रेणी के अन्तर्गत निम्न पोत आते थे :

नाम	लम्बाई	चौड़ाई	ऊंचाई
ऊर्ध्व	32	16	16
अनुर्ध्व	48	24	24
स्वर्णमुखी	64	32	32
गर्भिणी	80	40	40
मंथर	96	48	48

इनमें से अनुर्ध्व, गर्भिणी और मंथर को अनर्थकारी तथा ऊर्ध्व को राजाओं के लिए लाभकारी बताया गया था।

केबिन (दबूसा)

जहाज़ों के नाम उनके भीतर केविनों की स्थिति के अनुसार भी दिये जाते थे। स्वर्णमन्दिर नामक जहाजों में सिरे से सिरे तक केबिन होती थीं। उन्हें राजसी खज़ाना, घोड़ों और स्त्रियों को लाने-ले जाने के लिए प्रयोग किया जाता था। मध्यमन्दिर नामक जहाज़ों में केविन ठीक उनके मध्य-भाग में होती थीं। इनका उपयोग राजाओं के द्वारा सैर-तफरीह के लिए किया जाता था तथा यह वर्षा ऋतु के लिए उपयुक्त होते थे। अग्रमन्दिर पोतों में केबिनें मन्दान की ओर होती थीं। वे प्रमुख रूप से लम्बी यात्राओं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

के लिए उपयुक्त थे और नौ-युद्ध में इनका प्रयोग किया जाता था।

लकड़ी

पोत बनाने के लिए प्रयोग की जाने वाली विभिन्न प्रकार की लकड़ी को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था तथा इनका नामकरण हिन्दू समाज के चार सामाजिक वर्णों की तरह किया गया था। ब्राह्मण जाति की लकड़ी हल्की और मुलायम तथा इसे किसी भी अन्य प्रकार की लकड़ी के साथ जोड़ा जा सकता था। क्षत्रिय जाति की लकड़ी हल्की और कठोर थी किन्तु उसे अन्य लकड़ियों से जोड़ा नहीं जा सकता था। वैश्य जाति की लकड़ी मुलायम और भारी थी तथा शूद्र जाति की लकड़ी कठोर और भारी दोनों ही होती थीं। किन्हीं लकड़ियों में दो जातियों के गुण होते थे और इन्हें द्विजाति की संज्ञा दी जाती थी। क्षत्रिय जातिकी लकड़ी से बने जहाज सम्पत्ति और प्रसन्नता लाने वाले माने जाते थे और इन्हें कठिन समझी जाने वाली यात्राओं के लिए प्रयोग किया जाता था। विपरीत गुणों से युक्त विभिन्न जातियों की लकड़ियों से बने हुए जहाजों को घटिया समझा जाता था। क्योंकि ये आरामदेह नहीं होते थे तथा जल में शीघ्र खराब हो जाने के कारण अधिक समय तक चल भी नहीं पाते थे और मामूली झटके से ही टूट जाने की आशंका बनी रहती थी।

समुद्र पर ले जाने वाले जहाजों में लकड़ी के तख्तों को जोड़ने के लिए लोहे का प्रयोग करना इस कारण वर्जित था कि इसके समुद्र-स्थित चुम्बकीय चट्टानों के प्रभाव में आने की आशंका बताई जाती थी।

सजावट

यात्रियों के लिए इन जहाजों को पर्याप्त आरामदेह बनाने की दृष्टि से 'युक्ति कल्पतरु' में जहाज़ों को सजाने और सुसज्जित करने के लिये विस्तृत निर्देश दिए गए हैं। सजावट के लिए तीन धातुओं—सोना, चांदी और तांबे की सिफारिश की गई है। भिन्न-भिन्न जहाज़ों के रंग निर्धारित करने के नियम निश्चित थे। चार मस्तूलों वाले जहाज पर सफेद, तीन मस्तूल वाले पर लाल, दो वाले पर पीला तथा एक मस्तूल वाले जहाज़ पर नीला

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रंग किया जाता था। जहाज़ों के अग्रभाग के रूप और आकृतियाँ विविध प्रकार की तथा बड़ी अनोखी होती थीं जैसे किसी शेर का सिर, भैंस, सांप हाथी, चीता, हंस, तोता, मेढ़क अथवा मनुष्य की आकृतियाँ।

परिवर्ती काल के जहाज़

इसके परिवर्ती काल में, तेरहवीं शताब्दी ईसवी में मार्कोपोलो ने भारतीय जहाजों के बारे में रोचक विवरणों का उल्लेख किया है। समुद्री यात्रा में प्रयुक्त होने वाले जहाज 'फिर' वृक्ष की लकड़ी के बने होते थे। उन सभी में दोहरे तख्ते लगे होते थे अर्थात् प्रत्येक भाग के तख्तों के ऊपर आवरणात्मक फलकों की एक तह औरहोती थी। उनके बाहर-भीतर दोनों ओर ओकम अर्थात सन की कलापट्टी की जाती थी तथा तख्तों को लोहे की कीलों से जोड़ा जाता था। अनबुझे चूने और सन को एक साथ कूटकर उनमें किसी विशेष वृक्ष का तेल मिलाया जाता था। इस प्रकार बनाए गए विलेप को जहाज की तली पर लेपा जाता था। इस विलेप का लिस-लिसापन काफी देर तक बना रहता था तथा यह डामर से अपेक्षाकृत अच्छा पदार्थ था। मार्कोपोलो ने इतने बड़े आकार के भारतीय जहाज देखे जिन्हें चलाने के लिए 300 कर्मचारियों की आवश्यकता होती थी। ये जहाज मिर्च की 5000 से 6000 तक टोकरियाँ अथवा बोरियाँ ले जा सकते थे। इस तथ्य से इन जहाज़ों के आकार के विस्तार का किसी सीमा तक संकेत मिलता है। आमतौर पर इनमें एक ही डेक होता था और डेक के नीचे की जगह 60 तक छोटे केबिनों में विभाजित होती थी। प्रत्येक केबिन में एक व्यापारी के रहने का स्थान होता था। बड़ी जाति के कुछ जहाज़ों में केबिनों के अतिरिक्त 13 तक पोतभीत (वल्क हैड) अर्थात खाव में 13 तक प्रभाग होते थे जो एक-दूसरे में फंसे मोटे तख्तों के बने हुए होते थे। इनका ध्येय दुर्घटनाओं से रक्षा करना था। यदि जल जहाज में घुस आता तो भी जल एक भाग से दूसरे भाग में नहीं जा सकता था। और जल भरे प्रभाग में से माल को आसानी से हटाया जा सकता था। जब किसी जहाज को मरम्मत करने की आवश्यकता होती थी तब उसके मूल तख्तों पर रक्षा के लिए आवरण की एक और तह चढ़ा दी जाती थी। इस प्रकार

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तीसरी तह बन जाती थी। एक के बाद एक इस प्रकार की अधिक-से-अधिक 6 तह लगाई जाती थीं और इसके पश्चात जहाज को अप्रयोज्य करार दे दिया जाता था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय जहाज़रानी का भूतकाल काफी दीर्घ और शानदार रहा है और प्राचीन काल में समुद्र-यात्रा को बुरा नहीं समझा जाता था, जैसा कि परिवर्ती काल में समझा जाने लगा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उमास्वाती द्वारा दिया गया

जन्तु-जगत् का वर्गीकरण

प्राचीनतम समय से ही विविध लक्षणों की समानता और समरूपता को प्राणियों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करने के लिए आधार के रूप में प्रयुक्त किया गया है। हमारे ज्ञान की वर्तमान स्थिति में यह वर्गीकरण हमारे लिए अत्यन्त रोचक पाठन-सामग्री प्रस्तुत करते हैं। चरक और सुश्रुत ने जन्तुओं को मोटे तौर पर चार भिन्न-भिन्न ढंगों से वर्गीकृत किया—(1) वे स्थल पर रहते हैं या समुद्र में या वायु में (2) वे शाक-भक्षी हैं या मांसभक्षी (3) भिन्न-भिन्न रोगों में उनके मांस का क्या मूल्य हैं तथा (4) उनके जन्म की क्या विधि है।

जन्तुओं को केवल जन्म-विधि के विचार से उन्होंने सभी जन्तुओं को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया: (1) गर्भाशय में कमलनाल के साथ जन्मे जन्तु (2) अंडों से जन्मे जन्तु (3) नमी से पैदा होने वाले जन्तु और (4) वनस्पति से उत्पन्न हुए जन्तु (चरक) अथवा भूमि से निकलने वाले जन्तु (सुश्रुत)।

प्रशस्तपाद ने जन्तुओं को इस आधार पर विभाजित किया कि वे अलैंगिक रूप से जन्म लेते हैं या लैंगिक रूप से। लिंगी रूप से जन्मे जन्तुओं को दो उपविभागों में बांटा है—वे जो कमलनाल के साथ पैदा होते हैं तथा वे जो अंडों से पैदा होते हैं। अलिंगी-रूप से पैदा होने वाले जन्तुओं को और कई श्रेणियाँ में इन आधारों पर बाँटा गया था कि उनके शरीर में अस्थि एवं रक्त होता है अथवा नहीं, उन्हें आसानी से कुचला जा सकता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

था अथवा नहीं तथा उनमें से कितने मुट्ठी में आ सकते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों की संख्या पर आधारित

उमास्वाती ने अपनी पुस्तक 'तत्त्वार्थाधिगम' में, जिसे जैन तैथिक-सूचियों के अनुसार सन् 40 ई० में लिखा गया माना जाता है, एक अन्य विधि प्रस्तुत की है जिसके अनुसार उन्होंने जन्तुओं को उनमें विद्यमान ज्ञानेन्द्रियों की संख्या के आधार पर चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया।

प्रथम श्रेणी में वे जन्तु थे जिनमें केवल दो ज्ञानेन्द्रियाँ होती थीं। पहला स्पर्श जो ऊतक की संकुचनशीलता द्वारा प्रदर्शित होता था। दूसरा स्वाद जो भोजन की कुछ वस्तुओं की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति द्वारा प्रदर्शित होता था। इस श्रेणी में पाँच निम्न उपसमूह सम्मिलित थे (1) (आपादिका) पार्श्विक उपांगहीन कृमि (2) (नूपुरका) अखंडित पार्श्विक उपांग वाले कृमि जैसे केंचुआ, (3) (गंडुपाद) गठीली टाँगों वाले कीट (4) (शंख) मोलस्क तथा (5) (जालुका) जोंक।

दूसरी श्रेणी में स्पर्श, स्वाद तथा गंध नाम तीन ज्ञानेन्द्रिय वाले जन्तु थे। इसमें निम्न सात उप समूह थे: (1) चींटियाँ (पिपीलिका) (2) माटा (रोहिणका), (3) खटमल और पिस्सू (उपाचिका, कंठू तबूरका), (4) ककड़ी और कपास के घुन तथा जूं (त्रपुसविजा तथा कर्पसाश्यिका) (5) स्प्रिंग टेल्स (शतपादी और उतपत्का), (6) प्लाट लाइस तथा (7) दीमक, भाटा (काष्ठहरका)।

तीसरी श्रेणी में वे जन्तु आते थे जिनमें स्पर्श, स्वाद, गंध तथा दृष्टि नामक चार ज्ञानेन्द्रियाँ भलीभाँति विकसित और क्रियाशील होती हैं। इनमें निम्न जन्तु सम्मिलित थे: (1) मधुमक्खी, ततैया और हाड़ा (मरमारा, वरटा और सारंग), (2) मक्खी, नँट मच्छर, गोमक्षिका तथा मच्छर (मक्षिका, पुत्तिका, डांस, तथा मसका), (3) बिच्छू और मकड़ी (वृश्चिक और नद्यवरटा), (4) तितली और पतंगे (कीट) तथा (5) टिड्डा और टिड्डी (पंतगा)।

चौथी श्रेणी के जन्तुओं की स्पर्श, स्वाद, गन्ध, दृष्टि और श्रवण नामक पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ सुविकसित और क्रियाशील होती थीं। इस श्रेणी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

में निम्न जन्तु आते थे —(१) मछलियां (मत्स्य), (२) विविध सरीसृप (उरग और भुजंग), (३) पक्षी (पाकी), (४) चौपाए (चतुष्पद) और मनुष्य।

प्रजनन-विधि पर आधारित

उमास्वाती ने पांच ज्ञानेन्द्रिय युक्त उक्त चौथी श्रेणी के जन्तुओं को उनकी प्रजनन-विधि के अनुसार और आगे वर्गीकृत किया। इसके पहले उपविभाग में अंडे से उत्पन्न होने वाले (अंडज) जन्तु आते थे और इनमें सर्प, छिपकली, गिरगिट, मछलियां, सूंस (शिशुक), कछुआ, घड़ियाल तथा पंखयुक्त डैनों वाले पक्षी थे। दूसरे उपविभाग में गर्भनाल के साथ जन्मे (जरायुज) स्तनपायी आते थे। इसमें मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी, भेड़ घोड़ा, गधा, ऊंट, हिरन, याक, सूअर, शेर, चीता, रीछ तेंदुआ, कुत्ता, गीदड़ बिल्ली इत्यादि जन्तु सम्मिलित थे। तीसरे उपविभाग में वे सभी गर्भनाल युक्त जन्तु रखे गए, जो दूसरे उपविभाग में सम्मिलित नहीं किये गए थे। इस उपविभाग में थे —साही, हाथी, कांटा-चूहा, शशक, खरगोश, गिल-हरी-चूहा, चिमगादड़, गादुर तथा चमगिदड़ी।

उमास्वाती द्वारा प्रस्तुत जन्तु-जगत् के वर्गीकरण की उपर्युक्त योजना चरक, सुश्रुत और प्रशस्तपाद द्वारा प्रस्तुत पूर्व-योजनाओं से बहुत अधिक विकसित और उन्नत थी।

प्राचीन यूनानियों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

प्राचीन यूनान के सर्वप्रथम अरस्तु (ई० पू० ३८४-३२२) को जन्तुओं के वर्गीकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई बताई जाती है। अरस्तू ने जन्तुओं की दिनचर्या, क्रियाओं, आदतों तथा शारीरिक अंगों के वर्गीकरण के लिए कसौटी रूप में प्रयुक्त किया। अन्य व्यक्तियों ने वर्णक्रमानुसार आकार पर, रक्तमुक्तता अथवा रक्तहीनता, स्थलवासी अथवा जलवासी इत्यादि के आधार पर वर्गीकरण किया।

हिप्पोक्रीत्ज की एक पुस्तक 'आन डाइट' (आहार) में ५२ भिन्न-भिन्न भक्ष जन्तुओं का उल्लेख है। उनको चौपायों, पक्षियों अथवा मछ-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लियों की श्रेणी में रखा गया था। मछलियों में मोलस्क तथा सन्धिपाद भी सम्मिलित थे। जन्तुओं के वर्गीकरण के ये प्रयास विभिन्न भारतीय लेखकों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण के कमोवेश समान अथवा अधिक पुराने थे।

लिनाई वर्गीकरण

इस दिशा में भारतवासियों ने और आगे कोई प्रगति नहीं की, जबकि पश्चिमी संसार में १६वीं शताब्दी के पश्चात कई नये वर्गीकरण प्रस्तुत किये गए। आधुनिक वर्गीकरण जिस पद्धति पर आधारित है, वह पद्धति दो शताब्दी पश्चात् कार्ल लेनियस की पुस्तक 'सिस्टैमा नैचुरेल' में ही रूप ग्रहण कर पाई। बाह्य और आंतरिक संरचना, भ्रूण-विकास तथा जन्तुओं के अन्य लक्षणों के आधार पर उन्होंने जन्तुओं को भिन्न-भिन्न संघ, श्रेणी-क्रम, परिवार, प्रजाति जाति इत्यादि में समूहवद्ध किया तथा जन्तुओं की द्विनामी नामकरण पद्धति को प्रस्तुत किया।

० ० ०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्दावली

अंक	Numeral
अंकगणित	Arithmetic
अंकन	Notation
अंगुलास्थि	Phalanges
अक्ष	Axis
अतिसार	Diarrhoea
अधिचक्र	Epicycle
अनिर्धार्य समीकरण	Indeterminate Equation
अयनान्त बिन्दु	Soloticial point
अस्थिभंग	Fracture (bone)
आयत	Rectangle
आयतन	Volume
आयुर्विज्ञान	Medicine
आहार विद्या	Dietetics
उभयलिंगी	Hermephrodite
औषधशास्त्र	Materia Medica
औषधि	Medicine
औषधीय	Medicinal
किण्वित	Fermented
कीमिया	Alchemy
कीमियागर	Alchemist
कोटर	Socket

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

खगोल विज्ञान	Astronomy
गुणज	Multiple
गुलिका	Tubercle
घंटिका यंत्र	Clapsydra
घन	Cube
घनमूल	Cuberoot
घात	Degree
चतुर्भुज	Quadrilateral
चान्द्रदिवस	Lunar Day
चान्द्रमास	Lunar month
चिदुकास्थि	Mandible
ज्या	Sine
ज्यामिति	Geometry
ज्यामितिक	Geometrical
ज्योतिर्विद	Astronomer
ज्योतिर्विज्ञान	Astronomy
ज्वर	Fever
त्रिकोणमिति	Trignometry
त्रिभुज	Triangle
द्विघात समीकरण	Quadratic equation
निदान	Diagnosis
निर्मेय	Problem (Geometry)
पंचांग	Almanac
परिधि	Circumference
पशुचिकित्सा विज्ञान	Veterinary science
पित्त	Bile
पीतज्वर	Jaundice
पेचिश	Dysentry
प्रतिकारक	Antidote

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रतिच्छेदन बिन्दु	Point of Intersection
प्रतिवर्ती क्रिया	Reflex action
प्रमेय	Theorem
प्रसूतिविद्या	Midurfery
बीजगणित	Algebra
भगन्दर	Anal Fistula
भेषज	Medicine
भेषजीय	Medicinal
भ्रूणविज्ञान	Embryology
मोतियाबिन्द	Cataract
रक्तस्राव	Haemorrhage
रचना	Construction
रजःस्राव	Menstruation
रसौली	Tumor
रोगविज्ञान	Pathology
वर्ग	Square
वर्गमूल	Squareroot
विकर्ण	Diagonal
विषवत् रेखा	Equator
विषुव बिन्दु	Equinoctial point
वीर्य	Semen
वृत्त	Circle
व्यास	Diameter
शंकु	Cone
शरज्या	Versed sine
शरीर क्रिया विज्ञान	Physiology
शरीर रचना विज्ञान	Anatomy
शल्यक्रिया	Operation
शल्यचिकित्सक	Surgeon

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शल्यचिकित्सा	Surgery
श्रेढी	Progression
श्वेतक	Albumen
सन्धिभंग	Dislocation
समचतुर्भुज	Rhombus
समद्विबाहु	Isosceles
समबाहु	Equilateral
समलम्ब चतुर्भुज	Tropezium
समीकरण	Equation
सूत्र	Formula
स्वास्थ्यविज्ञान	Hygiene
हर्र	Myrobalan

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

BOOKS OF GENERAL INTEREST

JAGGI, Dr. O.P. : History of Science and Technology in India
With a Forword by Prof. D.S Kothari, Chairman. U,G.C.
Vol, I. Dawn of Indian Technology (Pre-and Proto-Historic Period) *(Illustrated)* (*1969*) 40·00
Vol. II Dawn of Indian Science (Vedic and Upnishadic Periods) (*1969*) 60.00

JAGGI. Dr. O.P. : Scientists of Ancient India 10·00
KANWAR LAL : Immortal Khajuraho (*Profusely Illustrated*) 200.00
KANWAR LAL : Apsaras of Khajuraho (*Profusely Illustrated*) 30 00
KANWAR LAL : Cult of Desire (*Profusely Illustrated*) 40·00
KANWAR LAL : Konarak (*Profusely Illustrated*) 80.00
KANWAR LAL The Story of Jawahar Lal Nehru (*Profusely Illusirated*) 4 50

BHAKTIVEDANT SWAMI, A.C. : Shrimad Bhagwatam (*English Verston*) (*Original Sanskrit Text, its Roman Translitration, English Synonyms of Words, English Transports and Purports*)
First Part. 16.00
Second Part. 16.00
Third Part. 16.00

MUNI SHIRI MAHENDRA KUMAR : Light of India
(Forword by Muni Nag Raj ji) 2·00
MUNI SHIRI NAGRAJ JI : Anuvrat Ideology 3 00
MUNI SHRI NAGRAJ JI : Light of Inspiration 1.25
MUNI SHRI BUDHMALJI : Tera Panth 1 00
RAMADHYANI, R.K. (I.C.S.) ; Gita's Light in Every Home
(Forword by Dr. S. Radhakrishnan), 3.00
RAMADHYANI R.K. : Essays and Addresses. (*Illustrated*) 7.50
RANDHAWA, M.S. : An Anthology of Great Thoughts 1.00
RAHBAR, HANS RAJ : Premchand – His Life and Work. Translated from the Hindi edition by Prof. P. Lal 7·00
HARIN SHAH : Gallant End of Netaji (Verdict from Formosa) **(Story of the Death of Netaji Subash Chander Bose)** (*Profusely Illustrated*) 7·50
HARIN. L.N. : Studies of Indian Leaders 3.50
SETHI, A.S. : Role of Collective Bargaing in Industrial Relations in India 7·50
V. AGNIHOTRI : Industrial Relations in India 20·00

ATMA RAM & SONS DELHI-6.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal